

षड् दर्शन सम्पत्तिः

तत्र प्रथम

योग दर्शनम्

पदक्रम भाषा-भाष्य सहित

ले०—सिद्धान्त वाचस्पति

श्री० पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित "चन्द्र"

सभापति निखिल भारतवर्षीय विद्वत्परिषद् आगरा

तथा

मैनेजर श्रीभगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस आगरा

प्रकाशक—

महाशय बैनीराम बुकसेलर

आर्य पुस्तक भवन, माईथान आगरा।

दूसरा पता—देव पुस्तकालय दरेशी नं० २, आगरा।

प्रथम संस्करण] सम्वत् १९९४ वि० [मूल्य १।)

दो शब्द

धर्म, अधर्म, लोक एवं परलोक तथा जड़ और चेतन के विषय सम्बन्ध में जो सत्योपदेश वेदों में बतलाया गया है वह तर्क सिद्ध होते हुये भी वह केवल योग द्वारा ही साक्षात्कार किया जा सकता है। आत्मा का साक्षात्कार, परमात्म दर्शन, प्रकृति एवं उसके विकारों का तथ्य रूप वस्तुतः योग से ही सिद्ध होते हैं योगारूढ़ प्राणी को प्रत्येक वस्तु का स्वरूप हस्तामलक होता है और प्रकृति पुरुष की गांठ खुल कर उसे अपवर्ग सुख (भूमा) की प्राप्ति होती है।

इस योग को चार भागों में बाँटा गया है। सबीज और निर्बीज समाधि की योग साधन, विभूति लाभ और मोक्ष प्राप्ति और इन्हीं विषयों की सिद्धि से प्राणी कृत कृत्य हो जाता है।

वेद, और उपनिषदों में इन्हीं का गूढ़ वर्णन भरा है जिसकी तालिका चित्त की वृत्तियों का निरोध है। इस योग से प्राणी को यह बोध हो जाता है कि वह अपने आप को देख लेता है और अपने स्वरूप में अवस्थित होकर कैवल्य लाभ करता है।

इस योग के अनुष्ठान के लिये गुरु शरण में जाना चाहिये जो स्वयं ब्रह्म निष्ठ और योगी हो वही इसका यथावत मार्गोपदेश दे सकता है व्यास भाष्य में आया है कि यह भूमि इस भूमि के अनंतर (व्यवधानहीन पश्चात्) की है इस विषय में योग ही गुरु है जैसे कि योग से योग को जानना योग्य है योग से योग प्रवृत्त होता है प्रथम योग अगले योग की प्रवृत्ति का कारण है जो योग से सावधान रहता है वह योग में चिरिक काल तक आनन्द लेता है।

इसलिये योग के अधिकारी कि जिसे आत्मा और परलोक में श्रद्धा हो इस कर्मानुष्ठान में उतरे अन्यथा नहीं। इस योग की मूल समास में यह प्रक्रियायें है कि ये कथन में स्वल्प भेद त्याग कर सांख्य और योग की समक्रिया माने। यह समस्त जगत सत्व रजस, तमसे युक्त है। गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है उससे महतत्व, महतत्व से अहंकार उससे शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नामक पंचतन्मात्रायें और एकादश इन्द्रियां (पांच ज्ञान और पाँच कर्मेन्द्रियां ग्यारहवा मन) इनके विषय एक अन्तःकरण के चित्त मन की सृष्टि है।

इन पंचतन्मात्र से पाँच महाभूत प्रकृति मूल कारण है वह किसो का कारण नहीं। स्थूल सूक्ष्म जगत सारा साक्षात् अथवा प्रवाह अनादि प्रकृति का परिणाम है चितिशक्ति इस ज़ड़ जगत से सर्वथा भिन्न है वही पुरुष है। यह पुरुष ही जगत का द्रष्टा है जगत उसका दृश्य है इस से परे पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं। इसी के सत्य सङ्कल्प से प्रकृति कार्य करती है इस प्रकृति का कार्य पुरुष को भोग सामग्री धर्मा धर्म पाप पुण्य रूप कर्म भूमि का प्रदान करना है जो आगमपायी का हेतु है अन्त में जीवको ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त कर लेने पर वह साथ छोड़ देती है और यह पुरुप अपने स्वरूप में ठहर जाता है उसकी अव्याहत गति हो जाती है और पूर्ण कृतकृत्य मानता हुआ ब्रह्मानन्द लेता है।

परमानन्द सरस्वती,
आगरा।



जिनके कोमल वरद हस्तों से मेरा लालन पालन एवं शिक्षा का सूत्र पात हुआ, जिन्होंने मेरी जन्मदाता माता के शरीर अवसान होने पर मेरे शैशव कालीन पुष्पा-माता श्री दुलारी देवी जी के देख रेख में जीवन-स्वास्थ्य संचार कराने में सतत उद्योग पूर्वक सफलता प्राप्त का उन्हीं दिगंवत आत्मा, परम श्रद्धेय श्री पूज्य पितामह श्री पं० खेमरामजी उपनाम श्री पं० लालमणि दीक्षित वीणा विशारद की संस्मृति में सादर समर्पित।

गोकुलचन्द्र दीक्षित



योग दर्शनम्

समाधिपादः

प्रणम्य परमात्मानं गिरानन्दं च सद्गुरुम्
आत्म-तत्व प्रबोधाय योग भाषा वितन्यते ।

अथ योगानुशासनम् ॥१॥*

प० क्र०—(अथ) अब (योगाऽनुशासनम्) योग शिक्षा आरंभ करते हैं ।

सं०—योग किस को कहते हैं :—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥

प० क्र०—(योगः) योग (चित्त + वृत्ति + निरोधः) चित्त की वृत्तियों के रोकने का नाम है ।

---

*अनुशासन शास्त्र को कहते हैं इसके कहने का यह अर्थ है कि भगवान् पतंञ्जलि से पूर्व भी योगोपदेश विद्यमान था। पूर्व वेद में पश्चात् को उपनिषदों में इस गुरु शिष्य परम्परा से अब दार्शनिक रूप धारण करता है यह भाव है ।

भाष्य—बाहर जगत के दृश्य का चित्त पर प्रभाव पड़ने से जो परिवर्त्तन होता है उस पूर्व आकार से नये परिवर्तित आकार वाली दशा का नाम वृत्ति है। यतः। भीतर आत्मा को उस वृत्ति का अनुभव होता है। इसी का नाम दृष्टि अथवा बोध है इसी से आत्मा को बोद्धा अथवा द्रष्टा भी कहते हैं और इसी का साक्षात् करने से आत्मा साक्षी है। जब यह साक्षी जगत के नाना पदार्थ देखता है तो चित्त सदा इन्हीं वृत्तियों में परिवर्त्तित होता रहता है अब जिस अवस्था में यह समस्त वृत्तियां लीन हो जाती हैं उसी अवस्था विशेष का नाम योग है।

विशेष—चित्त की पांच अवस्थायें हैं। क्षिप्त–(रजोगुण वृत्ति से तत्व का पता न लगने पर झट चित्त का बदल जाना) (२) मूढ़–(तमन वृत्ति की अधिकता से अधर्म, अज्ञान की ओर झुकाव) (३) विक्षिप्त–(कुछ रजस कुछ तमस गुणों के कारण कभी चित्त का स्थिर कभी अस्थिर होना) (४) एकाग्र–(चित्त और आत्मा के भेद प्रदर्शन से सत्य २ स्वरूप प्रतीति) (५) निरुद्ध–जब चित्त वृत्ति शून्य हो जावे वह अवस्था)

टि०—इन पांचों में पहिली तीन जिज्ञासुओं की और दो पिछली योगियों की चित्त वृत्तियां होती हैं।

सं०—निरुद्धावस्था में आत्मा क्या करता है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम् ॥३॥

प० क०—(तदा) तब (द्रष्टु) द्रष्टा (आत्मा) की (स्वरूपे) अपने में अवस्थिति=स्थिरता हो जाती है।

भा०—आत्मा अन्तर और बाह्य जगत के भेद पाकर स्वयं स्वरूप में ठहर जाता है और भ्रमित नहीं होता अपने को सम्हालता है। बुद्धि अचंचल हो जाती है इसी को परमगति कहते हैं अर्थात इन्द्रियों सहित मन की निश्चल धारणा का नाम यथार्थ योग है यहां अन्तर ज्ञान की उत्पत्ति तथा बाह्य ज्ञान की लयावस्था होती है और उसकी उन्नति अवस्था हो जाती है।

सं०—इस व्युत्थानावस्था में पुरुष का क्या स्वरूप होता है।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥४॥

प० क०—(वृत्तिसारूप्यम्) वृत्ति की एकावस्था (इतरत्र) अन्य अवस्था में।

भा०—इस दूसरी अवस्था में द्रष्टा=आत्मा वृत्ति के समान रूप वाला हो जाता है। अर्थात् जिन वृत्तियों से वह कभी शान्त, कभी अशान्त कभी मूढावस्था का अनुभव करता था इस व्युत्थानावस्था में उस की वृत्तियां इतनी समाहित हो जाती हैं कि उन में कभी हलचल सम्भव ही नहीं रहती और वृत्ति के अनुकूल आत्मा देखने लगता है इसी को ख्याति-दर्शन कहते हैं।

सं०—योग का लक्षण, योग की अवस्था और आत्मा की स्थिति एवं व्युत्थानावस्था में आत्मा की दशा कहने के पश्चात् अब जिन वृत्तियों के रोकने से योग होता है उसे कहते हैं

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ॥५॥

प० क्र०–(वृत्तयः) वृत्तियां (पञ्चतय्यः) पांच (क्लिष्टाऽक्लिष्टा) क्लिष्ट (राग द्वेष की हेतुका) और अक्लिष्ट (राग द्वेष नाशिका) हैं।

भा०—असंख्य वृत्तियों को पांच भागों में बांटा गया है वह अनुभव से दो प्रकार की हैं एक वह वृत्ति कि जिससे राग द्वेषादि क्लेश बढ़ते हैं और दूसरी कि जिन से राग द्वेषादि नष्ट होते हैं इन्हीं के वश में आत्मा शुभाशुभ कर्म करने लगता है क्योंकि वृत्तियां अपने अनुकूल संस्कार जो जन्म देती है अर्थात् क्लिष्ट वृत्तिया=बुरे और अक्लिष्ट=भले संस्कारों को उत्पन्न करती हैं। जिज्ञासु इस से सावधान रहे।

सं०—पांच वृत्तियां यह हैं।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥६॥

भाष्य—प्रमाण (अलौकिक विषय में आगम=वेदानुकूल वृत्ति) विपर्यय (वेद विरुद्ध मिथ्या ज्ञान) विकल्प (वस्तु शून्य शब्द=उपदेश) निद्रा (अभाव प्रतीत सत्ता हीन अनु-

भव) स्मृतयः (अनुभव युक्त ज्ञान की पुनरावृत्ति) यह पांच प्रकार की वाह्य जगत से वृत्तियों की सृष्टि होती है।

सं०—इन्हीं का विशेष विवरण किया जाता है।

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥

प० क्र०—(प्रत्यक्षाऽनुमानाऽऽगमाः) प्रत्यक्ष अनुमान और आगम (प्रमाणानि) प्रमाण।

भा०—प्रमा=यथार्थ बोध वृत्ति और अप्रमा=अयथार्थ बोध वृत्ति का नाम है। इसी से प्रमा जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे प्रमाण कहते हैं। इस प्रमाण की तीन दशायें है वह आत्मा को प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम द्वारा प्रमा तक पहुँचाते हैं और जिस २ आकार की जो वृत्ति बनती है उसी सम्बन्ध से उसका नाम लिया जाता है।

सं०—प्रमाण वृत्ति भेद के अनन्तर विपर्य्यय वृत्ति का स्वरूप कहते हैं।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥८॥

प० क्र०—(विपर्ययः) उल्टा ज्ञान (अतद् रूप प्रतिष्ठम्) जो रूप में प्रतिष्ठित नहीं।

भा०—यथार्थ ज्ञान वस्तु के तुल्य रूप में पाया जाता है और जो ज्ञान वस्तु तुल्य रूप न हो वह मिथ्या ज्ञान होता है।

इसी को अविद्या कहते हैं यही अनर्थ का बीज है इसी से स्वरूप की हानि होती है और जब आत्मा में अनात्म और अनात्म में आत्म वृत्ति हो जाती है तो वह आत्मा सत्य ज्ञान से कोसों दूर हो जाता है।

सं०—विकल्प वृत्ति क्या है ?

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥९॥

प० क्र०—(शब्दज्ञानाऽनुपाती) शब्द ज्ञान के पीछे आने वाला (वस्तु शून्यः) वस्तु शून्य–सत्ता हीन ज्ञान।

भा०—मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ इस को सुन कर जो सुनने वाले की वृत्ति बनती है उसका नाम विकल्प है, यह ज्ञान वस्तु शून्य है क्योंकि आत्मा जिन वस्तुओं से सुखी दुखी हुआ वह उसका स्वरूप न था जब ही तथ्य रूप भासित हुआ वह विपर्यय ज्ञान दूर हो जाता है।

सं०—निद्रा वृत्ति का विवरण इस प्रकार है।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥१०॥

प० क्र०—(अभावप्रत्ययाऽऽवलम्बना) अभाव की प्रतीत को स्थान देने वाली (वृत्तिः) वृत्ति (निद्रा) निद्रा है।

भा०—"मैं सुख से सोया और कुछ भी पता न रहा" इस गाढ़ प्रसुप्ति का नाम निद्रा है। इस दशा में ज्ञान का सर्वथा अभाव नहीं होता किन्तु स्वप्न और जाग्रत की वृत्तियां का अभाव कि "मुझे कुछ पता न रहा" इन शब्दों में

प्रकाशित किया जाता है इसी अभाव का पता लगाने वाली उस समय बनी रहने को निद्रा वृत्ति कहते हैं।*

सं०—स्मृति किसे कहते हैं ?

अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥११॥

प० क० (अनुभूत विषयाऽसम्प्रमोपः) अनुभव किये ज्ञान का न छुपा सकना (स्मृतिः) स्मृति है।

भा०—पदार्थ ज्ञान के पूर्व अथवा पश्चात् जो अनुभव किया जाता है और उससे जो चित्त पर संस्कार पड़ते हैं एवं उससे जो स्मृति होती है स्मृति वृत्ति कही जाती है यह स्मृति संस्कारों के ही अनुकूल हुआ करती है और संस्कार अनुभव के सदृश होते हैं अतः स्मृति का विषय अनुभव एवं संस्कार है।

सं०—यह सिद्ध है कि योग का लक्षण वृत्तियों पर अधिकार प्राप्त करना है। अब उनका निरोध (अधिकार) किस प्रकार हो बतलाते हैं।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१२॥

प० क०—(अभ्यास, वैराग्याभ्याम्) अभ्यास और वैराग्य से (तन्-निरोधः) उन (वृत्तिओं) का रोकना।

---

*गाढ़ प्रसुप्ति तो एकाग्रता के ही समान है उसको क्यों रोका जावे इस प्रश्न के उत्तर में अनुभव से पता चला कि निद्रा तमोमयी होती है वह सबीज और निर्बीज समाधि की विरोधिनी होने से उसका निरोध किया जाना बतलाया है।

भा०—चित्त का प्रवाह विषय और विवेक मार्ग की ओर रहता है। विषय की ओर वहने से कल्याण मार्ग से हट जाता है यही यदि ज्ञान की ओर जावे तो कल्याण प्राप्ति होती है इसलिये विषय की ओर न जावे इसके लिये अभ्यास (प्रतिबन्ध्य) लगावे और वैराग्य उस (विषय में राग रहित हो जावे तो यह उभय निरोध मन चाञ्चल्य पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

सं०—अभ्यास और वैराग्य को कहते हैं।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यास ॥१३॥

प० क्र०—(तत्र) उन (अभ्यास और वैराग्य) में से (स्थितौ) ठहरने में (यत्नः) प्रयत्न (अभ्यासः) अभ्यास (स्वभाव डाले या बनावे)

भा०—वृत्ति रहित चित्त अपने स्वरूप में तव ठहरता है कि जब, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, यज्ञा, यम नियम आदि अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग साधनों का अनुष्ठान (अभ्यास) किया जावे।

सं०—वह भी एक दो दिन के संयम से नहीं किन्तु

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः १४

प० क्र०–(सः) वह (तु) परन्तु (दीर्घकालनैरन्तर्य सत्काराऽऽसेवितः) लगातार बहुत दिनों तक क्रियानुष्ठान पूर्वक ठीक २ (वा) अथवा बारम्बार सेवन प्रयोग में लाने

से (दृढ़ भूमिः) दृढ़ अवस्था वाला। (योग होता है) अर्थात् भूमि बनती है।

भा० —विशेष ऊंची दशा अर्थात् वृत्ति अधिकार हो जाने से संस्कार योगी को बहिर्मुख करते है परन्तु अभ्यास अन्तरमुख करने वाला है यह पूर्ण पक्क अभ्यास निरन्तर सेवन (अभ्यास से होता है. अन्यथा अभ्यास शिथिल होने से स्थिरता लीन हो जाती है परन्तु तप, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा के योग पूर्वक अभ्यास से दृढ़ भूमि होती है उक्त दशा में व्युत्थान-संस्कार शीघ्र उसे दवा नहीं सकते और वैराग्य की ओर गति हो जाती है।

सं०—वैराग्य किसे कहते हैं।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्॥ १५

पं० क०—(दृष्टाऽऽनुश्रविक, विषय, वितृष्णस्य) दृष्ट और आनुश्रविक विषयों में तृष्णा रहित (वशीकार संज्ञा वैराग्यम्) वशीकार नामक वैराग्य है।

भा०—दृष्ट और आनुश्रविक दो प्रकार के विषय है। इस लोक में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्त्री, अन्न, पानादि ऐश्वर्य दृष्ट कहलाते हैं। शरीरान्तर वेद्य और अवस्थान्तर वेद्य यह भेद आनुश्रिविक के हैं इस में स्वर्ग, वैदेह्य प्रकृति लयत्व शारीरान्तर वेद्य हैं दिव्य, गन्ध रसादि

अवस्थान्तर वेद्य है। यह चित्त के दिव्य और अदिव्य कारणों से है। यह ऊपर वैराग्य है।

सं०—अव पर भैराग्य को कहते हैं।

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्णयम् ॥१६

प० क्र०—(तत्) वह-वैराग्य (परम्) सब से ऊंचा (पुरुषख्यातेः) पुरुप साक्षात्कार से (गुणवैतृष्णयम्) गुणों में तृष्णा रहित होना।

भा०—दिव्य और अदिव्य दोनों प्रकार के विषयों में वैराग्य हो जाना अपर वैराग्य है इसी में एकाग्रता होना सम्प्रज्ञात समाधि है इसी में आत्मा और चित्त के भेद का साक्षात्कार होता है इससे ऊपर विवेक ख्याति जो गुणों की अवस्था है उससे चित्त हटा कर जब स्वरूप स्थिति में योगी चाहता है तो यहीं पर धर्म मेघ समाधि होती है इसे ही पर वैराग्य कहा गया है। संसार संक्रम यहीं से टूट जाता है यह ज्ञान की पराकाष्ठा है यही कैवल्य मुक्ति है।

सं०—अव सम्प्रज्ञात समाधि यतः पहिले होती है तो उसका स्वरूप और भेद कहते हैं।

वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् संप्रज्ञातः ॥१७

प० कृ०—(वितर्क, विचारा, ऽऽ नन्दा, ऽ स्मिता, ऽ नुगमात्) वितर्क, विचार, आनंद और अस्मिता के सम्बध्ध से (सम्प्रज्ञातः) सम्प्रज्ञात होता है।

भा॰—वितर्कानुगत में चित्त को स्थूल में साक्षात्कार करना होता है और जिन्हें कभी देखा न सुना था केवल अनुमान मात्र था वह सब साक्षात् होते हैं। इसके दो भेद सवितर्क और निर्वितर्क होते हैं अर्थात् जब चित्त स्थूलाकार वस्तु को भेदन करके आगे बढ़ता है और पंच तन्मात्राओं के स्वरूप को जानता है तो समस्त विषय प्रत्यक्ष हो जाते हैं इसी क्रम से महत्तत्व और प्रकृति को साक्षात कर लेता है यह विचारानुगत सम्प्र ज्ञात योग है। आनन्दानुगत योग से बढ़कर अस्मितानगत योग होता है वहां पर इन्द्रियों से सूक्ष्म अस्मिता में चित्त को धारण करना होता है यहीं से जड़ चेतन की गांठ जो पड़ी है उसमें एक रूप प्रतीति होने लगती है। यही अहंकार और इन्द्रियों का कारण है।

सं॰—असम्प्रज्ञात योग का स्वरूप तथा उस का उपाय—

विरामप्रत्याभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः १८

प॰ क्र॰—(विराम, प्रत्यया, ऽभ्यास, पूर्वः) प्रतीत का अभ्यास विराम है पूर्व जिसके (संस्कार शेषः) संस्कार जिसमें शेष हैं (अन्य) दूसरा अर्थात् असम्प्रज्ञात (है)

भा॰—असम्प्रज्ञात योग द्वारा चित्त की एकाग्र वृति द्वारा स्थूल भूतों से सूक्ष्म भूतों पर्यन्त तत्वों को साक्षात् करने की सिद्धि होकर अपने स्वरूप में स्थिति होनी है। योगी इस योग द्वारा चाहता है कि दृश्यवृत्ति भी न रहे इस प्रतीति का नाम विराम अथवा परम वैराग्य है। यहां

पर वृत्तियों का सर्वथा अभाव हो जाता है और निरालम्ब ज्ञानप्रसाद मात्र से पर वैराग्य ही असम्प्रज्ञात की उत्पत्ति का हेतु होता है।

सं०—पूर्व जन्म से योग करते आये और दूसरे इसी जन्म में योगाराधन करने वाले दो प्रकार के जिज्ञासु होते हैं इन में से—

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१६

प० क्र०– (भव प्रत्ययः) जन्म सिद्ध प्रतीत (विदेह प्रकृति लयानाम्) विदेह और प्रकृति लयों की।

भा०—जिन योगियों ने योगारम्भ कर दिया था परन्तु आत्म-साक्षात्कारसे पूर्व ही उनका शरीर छूट गया उन्हें योग भ्रष्ट कहा जाता है यह दो प्रकार माने गये है, विदेह (२) प्रकृति लय। जिन्हें वितर्क समाधि द्वारा स्थूल तत्वों के समस्त विशेषों को साक्षात् करने का अवसर मिला और देह-तत्व के अहं भाव को त्याग विदेह कहलाये प्रकृति लय वह कहलाये कि जिन्हों ने विचार समाधि द्वारा आठ प्रकृतियों को साक्षात किया और चित्त प्रकृति लीन रहने से प्रकृतिलय कहे गये इन दोनो प्रकार के योगियों को आत्मा का साक्षात् कार नहीं होना सिद्ध होता।

सं०—यह योग क्रिया नष्ट नहीं होती और भ्रष्ट योग पुनर्जन्म लेकर योग साधना करते हैं।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञा पूर्वकइतरेषाम् ॥ २० ॥

प० क्र०— (श्रद्धा, बीर्य स्मृति,समाधि, प्रज्ञा पूर्वक:) श्रद्धा वीर्य स्मृति सभाधि और प्रज्ञा (यह क्रम) जिसका कारण है (इतरेषाम) दूसरों को।

भा०—सब को जन्म से नैसर्गिक रुचि योग में नहीं होती परन्तु जो विदेह और प्रकृतिलय हैं उनमें श्रद्धा उत्पन्न होकर रुचि हो जाती है उस श्रद्धा से वीर्य (उत्साह) उससे प्रबल स्मृति तथा समाधि और उस से पूर्ण प्रज्ञा का विकास होता है।

सं०—किसी को शीघ्र सिद्धि और किसी को देर में होती है इस का कारण।

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

पा० क्र०— (तीव्र संवेगा नाम) तीव्र वैराग्यवानों को (आसन्न:) निकट (सिद्धि होती है)

भा०—जिन्होंने उग्र तपश्चर्यादि साधन पूर्व जन्म की दृढ़-भूमि के कारण को सम्पादित कर लिया है उन तीव्र वैरागियों को समाधि एवं उसका फल तत्काल प्राप्त होता है।

सं०—यह तीव्र वैराग्य के क्या क्रम हैं।

मृदुमध्याधिमात्रत्वाततोऽपिविशेषः ॥ २२ ॥

प० क्र०—(मृदुमध्याऽधि मात्रत्वात्) मृदु=नम्र, मध्य और अधि मात्र=किंचित उग्र होने से (ततः अपि) उससे भी निकट (विशेष:) विशेष=निकटतर और तम (होती है)।

भा०—योगी जो श्रद्धा उपाय से कि जिस में किसी के मृदु किसी के मध्य और किसी के तीव्र होते हैं उसी क्रम से उसका वैराग्य भी मृदु, मध्य और उग्र होता है परन्तु जिसे अधिमात्र उपाय प्राप्त होता है उसे तीव्र वैराग्य से समाधि निकट होती है और शिथिल उपायों से समाधि दूर होती है अतः अधिमात्र उपाय करना चाहिये।

सं०—अब यह बतलाते हैं कि इस के प्राप्ति के और भी उपाय हैं या यही हैं।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

प० क्र०—(ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वर-प्रणिधान से (वा) अथवा विशेष=निकट तम समाधि होती है।

भा०—अनन्य चित्त होकर जब योगी ईश्वर-भक्ति में तत्पर (तन्मय) होता है तब उसे ईश्वर प्रसाद पूर्वक दया दृष्टि से प्रत्यक्ष होते हैं और उस सम्प्रसाद से योगी को इच्छा सिद्धि होती है जो योग का लक्ष्य है।

सं०—ईश्वर के स्वरूप का निरूपण करते हैं।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषईश्वरः २४

प० क्र०—(क्लेश, कर्म विपाका ऽऽशयैः) क्लेश, कर्म (उनके) फल तथा वासनाओं से (अ, परा मृष्टः) स्पर्श रहित (अछूता) (पुरुष, विशेषः) पुरुष विशेष (ईश्वरः) ईश्वर।

भा०—इस शरीर में दो पुरुष हैं एक जीव नामक आत्मा है दूसरा परमात्मा नामक आत्मा है, दोनों में भेद इतना ही है कि जीवात्मा, कर्त्ता, भोक्ता, वासना युक्त रहता है परमात्मा का इन से कोई सम्बन्ध नहीं। इस में भी इतना भेद है कि मुक्ति पुरुप किसी काल में उपर्युक्त कर्मों से रहित होते हैं परन्तु परमात्मा न कभी इन कर्म बन्धनों में किसी देश काल अथवा अवस्था में आया और न आ ही सकता है यही इस पुरुष की विशेप जीवात्मा से है परमात्मा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वान है जीवात्मा कभी शुद्ध कभी बुद्ध और कभी मुक्त तथापि सर्वथा और सर्वांश में एक रस नहीं रहता।

सं०—ईश्वर का स्वरूप दर्शा कर उसके होने में प्रमाण देते हैं।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्॥ २५॥

प० क्र०—(तत्र) उस में (निरतिशयम्) अतिशय = बढ़ती रहित (सर्वज्ञ, वीजम्) सर्वज्ञता का बीज।

भा०—जिससे कोई वस्तु अधिक बढ़ चढ़ कर न हो वह निरतिशय कही जाती है इसी प्रकार मनुष्य में जो सर्वज्ञता का बीज है जो सब प्राणियों में संस्कार योग्यता से थोड़ा बहुत अथवा अधिकाधिक हो वह स्वतिशय है अतः इस ज्ञान की जहां सीमा हो वह पूर्ण सर्वज्ञता है यही निरतिशय था।

सं०—अतः यह

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥

प० क्र०—(पूर्वेषां) पूर्वजों का (अपि) भी (गुरुः) गुरू है (कालेन) काल करके (अनवच्छेदात्) अवच्छेद= सीमाः नहीं होने से ।

भा०—प्रत्येक वस्तु पर काल की सीमा है जो सर्ग में गुरू जन हुये हैं वह भी उससे पूर्व नहीं थे अतः वह भी काल मर्यादा में आते हैं परन्तु परमात्मा काल-रेखा में नहीं आता अतः उसे गुरूओं का गुरु कहा गया है अर्थात् वह स्वर्गारम्भ से जिस प्रकार था अनति सर्ग आदि में भी वही गुरुओं का गुरू रहेगा । अर्थात् ईश्वर ही परम गुरु है ।

सं०—इस परम गुरु ईश्वर का प्रणिधान कैसे करना चहिये ।

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

प० क्र०—(तस्य) उस (ईश्वर) का (वाचिक-) नाम (प्रणवः) ओङ्कार है ।

भा०—'ओ३म्' उस परम गुरु ईश्वर का नाम है इस ओङ्कार का उस परम गुरू से नित्य सम्बन्ध है और सर्ग प्रति सर्ग आदि से अन्त तक यह उद्गीथ उपासना में चिरं-जीव रहेगा ।

सं०—प्रणिधान किसे कहते हैं ।

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

प० क्र०–(तज, जपः) उसका जप (तद,ऽर्थ. भावनम्) उसके भाव (अर्थ) का चिन्तवन करना।

भा०—जब योगी उस परमात्मा के वाचक "ओङ्कार" की उपासना में उसके अर्थ (भाव) को एकाग्र होकर चिन्तवन करता है तो उसका ध्यान स्थिर हो जाता है और इस से दृढ-चित्त-भूमि बनती है।

सं०—उपासना या प्रणिधान का फल क्या है।

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ २९ ॥

प० क्र०–(ततः) उस (उपासना) से (प्रत्यक् चेतना,ऽधिगमः) जीवात्मा की प्राप्ति (अपि) भी (अन्तरायाऽभावः) विघ्नों का अभाव (च) और।

भा०—योग करते समय जो विघ्न उपस्थित होते हैं वह सर्वथा निश्शेष हो जाते हैं एवं आसन्नतम (अति शीघ्र) समाधि सिद्धि होती है। इस समाधि में जीवात्मा की प्राप्ति (स्वरूप ज्ञान) और तदुपरान्त परमात्म प्रकाश-दर्शन होता है क्योंकि जीवात्मा का अन्तर्यामी पुरुष परमात्मा है और ईश्वर का अनुग्रह जो योग में आवश्यक वस्तु है योगी की सहायता करता है।

सं०—योग में विघ्न क्या २ होते हैं।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

प० क्र०-(व्याधि.......... त्वानि) व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्ध भूमि कत्व, और अनवस्थितत्व (चित्त विक्षेपाः) चित्त का उचाट (ते) वे (अन्तरायाः) विघ्न हैं।

भा०—योग करते समय यह नौ प्रकार की विघ्न बाधायें होती हैं अर्थात् धातु रस अथवा इन्द्रिय विचार से ज्वरादि रोग का नाम व्याधि विघ्न है। योग करने की क्रिया न ज्ञात् (अधूरा ज्ञान) हो इसे स्त्यान,। यह संशय रहना कि मैं योग कर भी सकूंगा या नहीं, संशय। योग के अङ्ग यम नियमादि का उपालन प्रमाद। काम में शरीर व चित्त भारी होवे और योग क्रिया रहित आलस्य। विषयों में इच्छा बनी रहे अविरति। तत्व वस्तु में मिथ्या अभ्यास अर्थात् असत्य ज्ञान भ्रान्ति दर्शन। समाधि अवस्था में न पहुंच सकना अलब्ध भूमि कत्व। समाधि होते हुये भी उस में चित्त न ठहरे अर्थात् ध्येय प्राप्ति से पूर्व ही समाधि छुट जावे उसे अनवस्थितत्व विघ्न माना है यही मल और अन्तराय योग भ्रष्ट कहते हैं।

सं०—यह अन्तराय और मल किस कारण होते हैं।

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वास-प्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

प० क्र०—(दुःख ················ साः) दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास और प्रश्वास (विक्षेप, सहभुवः) विक्षेप के साथी हैं।

भा०—क्लेश पीड़ा से दुखी होकर उसके विनाश की चेष्टा से जो चिन्ता वह दुःख। उस में असफल प्रयत्न रहने से मन में क्षोभ होना दौर्मनस्य। मनकी दुर्बलता से अंग कम्पन (क्रोध) अंग में जयत्व। उस से श्वास का अधिक व्यय करना कि जो योग में निर्बलता लाता है श्वास तथा बिना इच्छा के कुम्भक प्राणायाम वायु को बिगाड़ना प्रश्वास विक्षेप कहे जाते हैं। योगी अपनी श्वास को इच्छा अथवा अनिच्छा से नहीं नष्ट करता वह नियम पूर्वक श्वास स्वभाव से इस पर विजय करता है और तभी तक वह विक्षिप्तावस्था से परे रहेगा।

सं०—यह विक्षेप कैसे नष्ट हों।

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

प० क्र०—(तत्प्रति षेधाऽर्थम्) उनके रोकने के लिये (एकतत्वाऽभ्यासः) एक तत्व में अभ्यास (करना चाहिये)

भा०—चित्त को किसी एक निश्चित लक्ष्य में लगा कर अनवरत रूप अभ्यास करने से एकाग्रता जागृति होती है यह एक तत्व ईश्वर ही है इसी को लक्ष्य में लाकर ध्यान स्वास्थित होने से विक्षेप बाधा नहीं व्यापती और समाधि सफल होती है।

सं०—चित्त शुद्ध-निर्मल होने का उपाय बतलाते हैं।

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणांसुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणांभावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

प० क्र०—(मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणाम्) मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षा (उदासीनता) के (सुख दुःख पुण्या पुण्य विषयाणाम्) सुखी दुखी पुण्यात्मा और पापियों के बारे में (भावनतः) पुनः चिन्तवन) से (चित्त प्रसादनम्) चित्त की निर्मलता।

भा०—जब तक चित्त से निन्दा, स्तुति, भय, लज्जा, मान अपमानादि दोष नहीं निकलते चित्त डांवाडोल रहता है उस दशा में आसन दृढ होकर योग नहीं हो सकता अतः क्षुद्र संस्कारों से चित्त को बचाये रहे। इस लिये सत्पुरुषों से मित्रता भावना रक्खे, प्रसन्न रहे, अपुण्यात्माओं के प्रति उदासीनता भावना रक्खे, और अमर्थ (क्रोध हीन) वृत्ति बनावे।

सं०—मैत्री भावना से निर्मल-चित्त योगी की क्या स्थित होती है।

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

प० क्र०—(प्रच्छर्दन, विधारणाभ्याम्) वाहर निकालने और ठहराने से (वा) अथवा (प्राणस्य) प्राण के ।

भा०—प्राणों के जीतने पर चित्त पर अधिकार हो जाता है इस लिये जव मैत्री आदि से चित्त निर्मल हो योग करे तो प्राणों का संयम होकर चित्त वशीकरण हो जाता है ।

सं०—चित्त को कैसे ठहरावें !

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसःस्थितिनिबन्धनी ॥ ३५ ॥

प० क्र०—(विषयवती) विषयों वाली (वा) अथवा (प्रवृत्ति) झुकाव (उत्पन्ना) उत्पन्न हुई (मनसः) मनकी (स्थिति निबन्धनी) स्थिति को बांधने वाली ।

भा०—रूप रसादि विषय वाली प्रवृत्ति से मन की स्थिति का बंधन होता है इसलिये यह भी चित्त वशीकार का एक उपाय है कि यदि दिव्य गन्ध साक्षात्कार करना हो तो नासिका के अग्र भाग में चित्त का संयम करे । इसी प्रकार यदि दिव्य रसानंद अनुभव करना हो तो जिह्वा के अग्र भाग में, दिव्य रूप का अनुभव करना होतो तालु में दिव्य स्पर्श का अनुभव जिह्वा के बीच में और दिव्य शब्द साक्षात्कार करने के लिये जिह्वा के मूल में

संयम करना चाहिये। इन के करने से योग श्रद्धा बढ़ती है क्योंकि शीघ्र सिद्ध होते हैं। योग श्रद्धा मूलहै।

सं-चित्त वशीकार का दूसरा उपाय भी है।

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥३६॥

प० क्र०-(वि, शोका) शोक (सोच) रहित (वा) अथवा (ज्योतिःस्मति) ज्योति = प्रकाश वाली।

भा०—शोक रहित प्रवृति से भी चित्त सयम वनता है क्योंकि वह प्रकाश वाली है और मन को वांध लेती है। निर्मल अन्त- करण का नाम प्रफुल्ल कमला या हृत्पुण्डरीक है वह समस्त नाडियों का केन्द्र होने से एक सु षुम्णा नाड़ी नामक नाल के संयम-द्वारा मन का साक्षात्कार हो जाता हैं यह मन सूर्य, चन्द्र तारा और मणि आभा सदृशप्रभाओं के समान अनेक प्रकार का ऊंचा नीचा उग्र, अनुग्र है इसी को मन की साविक् ज्योति कहते हैं इस में संयम करने वाला योगी सूक्ष्म आत्मा को ढूंढ कर कहता है 'मैं हूँ' यह सात्विक अस्मिता साक्षात्करण मन और अहंकार सात्विक ज्योतियां है इस के अनुभव से सुख ही सुख प्रतीत होता है यही विशोका प्रवृति है इसी से अनुभूत ज्योतियां विषयवाली ज्योतिष्मती और अस्मिता मात्रा ज्योतिष्मती कहलाती है।

सं०—जब ज्योतिष्मती प्रवृति जाग्रत हो तो क्ता होता है !

वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

प० क्र०—वीत राग, विषयम्,) राग रहित पुरुषों को विषय (रुचि) करने वाला (वा) अथवा (चित्तम्) चित्त ।

भा०—ज्योतिष्मती प्रवृति से वीतराग पुरुषों में रुचि बढ़ती है इस से भी चित्त स्थिर हो जाता है क्योंकि उनका सत्संग निर्दोष विषय रहित भावना मुक्त हो जाता है उस प्रभाव से चित्त चचंलता रहित ठहर जाता है और विषयों में नहीं जाता सदा उपेक्षा रहित उदासीन रहता है ।

सं०—चित्त बांधने के और भी उपाय हैं ।

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥

प० क्र०—(स्वप्न निद्रा ज्ञाना ऽऽव लम्वनंम्) स्वप्न ज्ञान और निद्रा ज्ञान को स्थान देने वाला (वा) अथवा ।

भा०—जीवात्मा जाग्रत में स्थूल में विहार करता है, और सूक्ष्म देह में विना ही स्थूल शरीर के देखता सुनता है और निद्रा में कारण शरीर में विचरता है जब वह स्वप्न और निद्रा के ज्ञान का आश्रय ण जाग्रत में करता है तो उसका चित्त समाहित हो जाता है ।

सं०—इस से भी एक सुगम उपाय चित्त ठहराने का है ।

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

प० क्र०—(यथा, ऽभिमत ध्यानात् । जिस योगी जो पूर्वोक्त विधि यों से अतिरिक्त (अभिमत हो उसके ध्यान से (वा) अथवा ।

भा०—योग में चित्त ठहराने के दो प्रकार हैं वाह्य देश और आभ्यान्तर देश अब जहां जिस स्थान में चित्त रुचि के अनुकूल ठहरने लगे वहीं उसी के अनुसार चित्त-स्थैय योग्यता नामक योग बनता है।

सं०—चित्त की थिरता का फल क्या है।

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्यवशीकारः ॥ ४० ॥

पा० क्र०-(परमाणु, परम महत्वाऽन्तः) सब से बढ़कर सूक्ष्म और सबसे बड़े पर्यन्त (अस्य) इसका (वशीकार) वशीकार होता है।

भा०—जब योगी यथाभिमत चित्त स्थिरता में परिपक्क हो जाता है तो वह सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु पर्यन्त और महान में लगाने से परम महान-आकाश पर्य्यन्त जहां चाहे चित्त स्थिर कर सकता है अर्थात् अनवरोध चित्त की लगावट स्थिरता की ओर जाती है इस देशा में चित्त-संयम-अनुष्ठान की पुनः आवश्कता नहीं रहती। चित्त वशीकार की यह अन्तिम-स्थिति है।

सं०—इस निर्मल चित्त का क्या रूप होता है है

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

प० क्र०-(क्षीण वृत्ते) वृत्तियों से शून्य (अभिजातस्य) निर्मल (इव) तुलय (मणेः) मणि की (गृहीतृग्रहण, ग्राह्येषु) आस्मिता = अहं भाव, इन्द्रिय ग्राह्य = स्थूल

सूक्ष्म विषय (ततस्थ तदञ्जनता) उन में स्थित होकर लीन होना (समापत्तिः) तद्रुप होना है।

भा०—स्फटिक मणि के समीप जैसा रंग रूप आता है वह उसी के तदाकार रूप हो जाता है इसी भांति चित्त से जब राजस तामस वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं तो चित्त इतना स्वच्छ हो जाता है कि उसकी बढ़ी हुई सात्विकता से जिस वस्तु में उसे एकाग्र करना हो वहीं अपने रूप और आकार को निहित करके वह तद्रप होता है और पूर्ण तन्मयता से उसी में लीन हो जाता है। और ग्राह्य=बाह्य स्थूल सूक्ष्म में, ग्रहण=इन्द्रियादि में, ग्रहीता=अहंभाव (अस्मिता) में लगाकर उनका सम्यक साक्षात्कार करता है।

सं०—इस तद्रुपता वश चार भेद प्रतीत होते हैं।

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥४२॥

प० क्र०-(शब्दार्थ, ज्ञान, विकल्पैः) शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पों से (संकीर्णा) मिली हुई (स वितर्का) सवितर्का =शब्द अर्थ, और ज्ञान के विकल्पों से मिश्रित।

भा०—वितर्क समापत्ति समाधि में स्थूल में चित्त एकाग्र किया जाता है। इसी प्रकार सूक्ष्म में चित्त संयम से विचार समापत्ति समाधि होती है। स्थूल में समाधि से संसार

के जितने पदार्थ उनके उतने ही नाम, होते हैं इस लिये एक के ज्ञात होते ही जैसे शेष झट दूसरे का ज्ञान हो जाता है जैसे अर्थ भान होते ही शब्द का स्मरण हो आता है और शब्द श्रवण मात्र से भाव अथवा अर्थ अव गत होता है इस से योगी की स्थूल लक्ष्य समाधि सिद्धि हो जाती है। जव पूर्वाभ्यास पूर्वक शब्द, अर्थ, और ज्ञान इन तीनों की प्रतीत होती है तो सवितर्क समाधि वनती है।

सं०—इस स्थूल लक्ष्य समाधि के उपरान्त।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थ-मात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

प० क्र०-(स्मृति परिशुद्धौ) स्मृति नष्ट होने पर (स्वरूप शून्या, इव) स्वरूप से शून्य के समान (अर्थ मात्र निर्भासा) अर्थ मात्र की प्रकाशिका (निर्वितर्का) निर्वतका है।

भा०,—शब्द की जव तक स्मृति वनी रहती है तव तक उसे सवितर्का समापत्ति ही कहते है परन्तु जव चित्त केवल अर्थ मात्र का ग्रहण करता हुआ उस ओर को जाता है तव स्मृति–भंग हो जाती है और अर्थ प्रतीति ही शेष रहती है इस निर्वितर्का समाधि में यद्यपि ज्ञान तो रहता है परन्तु वह नहीं के बरावर होता है क्योंकि उसकी भिन्न प्रतीति नहीं होती मानो अपने ग्रहण

(ज्ञान) स्वरूप को त्याग कर ग्राह्य स्वरूप ही बन जाता है। इसी लिये इसे स्वरूप-शून्या-सदृशा कहा जाता है।

सं०—स्वरूप शून्या समाधि के अनन्तर क्या है।

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥

प० क्र०—(एतया, एव) इसी से (सविचारा, निर्विचारा, च) सविचारा और निर्विचारा (सूक्ष्म विषया) सूक्ष्म विषय में (व्याख्याता) विवरण की गई है।

भा०—यतः स्थूल विषयों में सवितर्का और निर्वितर्का समापत्ति मानी गई है उसी प्रकार सूक्ष्म विषयों में सविचारा और निर्विचारा समाधि होती है। सविचारा में सूक्ष्म विषय देश काल निमित्त से प्रतीत होते हैं तथा शब्द अर्थ और ज्ञान के साथ प्रतीत होते हैं परन्तु जब साक्षात करते २ सब विस्मरण हो जाते हैं और अर्थ मात्र अनुभव होता है निर्विचारा समापत्ति हो जाती है।

सं०—सूक्ष्म विषयों की इयत्ता कहां तक है।

सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ॥४५॥

प० क्र०—(सूक्ष्म, विषय त्वम्) सूक्ष्म विषय पने, (च) और (अलिङ्ग—पर्य व सानम्) प्रकृति पर्यन्त हैं।

भा०—पञ्च महा भूत स्थूल विषय कहे गये हैं उन में सवितर्का और निर्वितर्का समाधि होती है इन्हें साक्षात्कार कर के योगी चित्त क्रम से सविचारा और निर्विचारा समाधि द्वारा सूक्ष्म विषयों को साक्षात् करता है क्योंकि पंच महा भूतों में पंच तन्मात्रा सूक्ष्म ही है उन में अहंकार अहंकार से महतत्व और महतत्व से प्रकृति सूक्ष्म मानी गई है।

सं०—यह चारों समापत्तियां सम्प्रज्ञात समाधि हैं।

ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

प० क्र०—(ताः एव) वे ही (स, बीजः) स बीज (समाधिः) समाधि (है)।

भा०—सबीज समाधि सवितर्क निर्वितर्का, सविचारा और निर्विचारा समापत्तियों का ही नाम है इतने तक तो संसार बीज से पुरुष छुटकारा नहीं पाता।

सं०—निर्विचार समापत्ति सब से ऊंची है उसका रूप कहते हैं।

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

प० क्र०—निर्विचार समाधि के सिद्धि होने से स्थिति का प्रवाह निर्मल हो जाता है और स्थिति होने से प्रज्ञा निर्मल होती है इस स्थिति में शुद्ध दर्पण में प्रतिभात स्वरूप की नाई प्रकृति पर्यन्त सब पदार्थों का स्पष्ट साक्षात्कार हो जाता है।

सं०—निर्विचार की निर्मलता में जो प्रज्ञा होती है उसे क्या कहते हैं।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥४८॥

प० क्र०—(ऋतम्भरा) सत्य को धारण करने वाली (तत्र) उस में (प्रज्ञा) प्रज्ञा।

भा०—निर्विचार समापत्ति से जो निर्मलता उस में जो प्रज्ञा होती है उसे ही ऋतम्भरा कहते हैं क्योंकि वह सत्य को धारण करने वाली सार्थक हैं उस में भ्रान्ति की गन्ध तक नहीं होती।

सं०—सूक्ष्म पदार्थों का अनुमान और शब्द से भी ज्ञान होता है परन्तु इस प्रज्ञा में विलक्षणता होती है।

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषयाविशेषार्थत्वात् ॥४९॥

प० क्र०—(श्रुता नुमान, प्रज्ञाभ्याम्) आगम एवं अनुमान प्रज्ञा से (अन्य विषया) विषय भिन्न होने से (विशेषा, ऽर्थत्वात्) विशेष विषय वाली हैं।

भा०—सामान्य और विशेष दो प्रकार के पदार्थ स्वरूप होते हैं। जो सब प्रकार के पदार्थों में पाया जावे वह सामान्य। विशेष का अपना २ रूप है। आगम और अनुमान से केवल पदार्थ ज्ञान होता है वह भी उसके सामान्य रूप का पाया जाता है परन्तु निर्विचार समापत्ति में विशेष रूपका भान होना यही इसकी महत्ता है।

सं०—प्रज्ञा का फल यह है कि।

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ ५० ॥

प० क्र०–(तज, जः) उससे उत्पन्न होने वाला (संस्कारः) संस्कार (अन्य, संस्कार, प्रति बन्धी) अन्य संसकारों का अवरोधक (है)।

भा०—व्युत्थान के संस्कारों से चित्त की निर्मलता तो समाधि से पूर्व की दशा है परन्तु समाधि अवस्था में जो योगी को अनुभव होकर उसके संस्कार प्रभाव रखते हैं इनका प्रभाव पूर्व की अपेक्षा बलवान होता है क्योंकि प्रज्ञा की निर्मलता में पदार्थ का तत्व अनुभ होता है जो कि व्युत्थान प्रज्ञामें नहीं होती अब इस प्रभाव से समाधि प्रज्ञा होती है और वह व्युत्थान संस्कार को सर्वथा रोक देते हैं।

सं०—अब निर्वीज समाधि का रूप कहते हैं।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधा न्निर्बीजः समाधिः ॥ ५१

प० क्र०–(तस्य) उसके सवीज समाधि के संस्कार के (अपि) भी (निरोध) रुक जाने पर (सर्व निरोधान्) सब की रुकावट से (निर, बीजः) निर्वीज समाधि होती है।

भा०—व्युत्थान के संस्कार सवीज समाधि से रुक गये थे अब सवीज समाधि संस्कार चित्त को समाधि प्रज्ञा में

प्रेरणा करते हैं यह वह प्रज्ञा होती है कि जिससे अपने और प्रकृति भेद को देखता है। यह भेद चित्त और अपनी एकाग्रवृत्ति द्वारा साक्षात्कार होते हैं। वृत्ति आत्मा का रूप नहीं किन्तु चित्त का है अतः वह आत्मा के सम्मुख एक दृश्य मात्र है। इस से आत्मा हट कर स्व स्वरूप में जाना चाहता है। अत, दृश्य के सन्मुख कोई दृश्यतो रहा नहीं क्योंकि योगीकी 'प्रबल इच्छा ने समाधि प्रज्ञा के संस्कारों को रोक दिया था अतः वह अपने आप में आजाता है इस दशा में वह शुद्ध परमात्मा का दर्शन करता है। और सब फांसों से छूट जाता है।

इति श्री पं० गोकुल चन्द्र दीक्षित कृते भाषा भाष्ये
योग दर्शन समाधि पादः समाप्तः।

॥ ओ३म् ॥

साधनपादः ।

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥१

प० क्र०—(तपः स्वाध्याये, श्वर, प्रणिधानानि) तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान (क्रिया योगः) क्रिया योगः कर्म योग है।

भा०—शीत, उष्ण, सुख, दुख सहना तप। वेदोपनिषद धर्म एवं ब्रह्म विद्या के ग्रन्थों का स्वाध्याय। सर्व कर्मो को ईश्वर के अर्पण एवं फल त्याग करना ईश्वर प्रणिधान कहा जाता है।

सं०—इस क्रिया योग का क्या फल है।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥२

प० क्र०—(ससाधि, भावनाऽर्थः) समाधि की उत्पत्ति ही जिसका उद्देश्य है (क्लेश, तन, करण,ऽर्थः) जिससे क्लेश द्वन्द सूक्ष्म=न्यून होना प्रयोजन है (च) और।

भा०—प्रवल क्लेस उपस्तित होने से समाधि नहीं हो सकती इस लिये इस क्रिया योग से चित्त शुद्ध होकर क्लेशों को कम करता हैं इस से विवेक ख्याति का उदय होता है तब क्लेश आमूल चूल नष्ट हो जाते हैं।

सं०—वह कौन से क्लेश हैं कि जिन के लिये क्रियः योग आवश्क है।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥३

प० क्र०—अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष और अभि निवेश ये पंच क्लेश हैं।

भा०—यह पांचों ही विपर्यय हैं अर्थात मिथ्या ज्ञान अविद्या है परन्तु अस्मिता, आदि विपर्यय स्वरूप नहीं परन्तु सबका कारण मूल अविद्या ही है इस लिये अविद्या का नाश होने पर शेप क्लेश समूल नष्ट हो जाते हैं।

सं०—अविद्या ही सब क्लेशों की जड़ है।

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ४

प० क्र०—(अविद्या) मिथ्या ज्ञान (क्षेत्रम) उत्पत्ति की भूमि (उत्तरेषाम) उतरो (अंहकार) आदि का (प्रसुप्त तनु विच्छिन्नो दाराणाम) प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदारों का।

भा०—चित्त भूमि के वह क्लेश कि जो होते हुये भी जागरित नहीं हुये वह प्रसुप्त। जिनकी शक्ति काम करने की शिथिल (ढीली) हो गई है अर्थात पर्याप्त सामग्री मिलने तक कार्य में असमर्थ तनु। एवं चित्त में राग होते हुये विछिन्नता को प्राप्त होकर जो उदार होता है और वही जब विषय राग अन्य विषयों में वर्त्तमान हो

तो उसे विछिन्न और उदार कहते हैं। जब क्लेश नष्ट हो जाते हैं तो जीवत्मुक्तावस्था पुरुष साक्षात् पूर्वक होती है यही क्लेश की पांचवीं अवस्था है।

सं०—अविद्या किसे कहते हैं।

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु
नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥५

प० क्र०–(अनित्या,ऽशुचि, दुःखीऽनात्मसु) अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्मा में (नित्य शुचि सुखाऽऽत्म ख्यातिः) नित्य पवित्र सुख और आत्मा का ज्ञान (अविद्या) मिथ्या ज्ञान है।

भा०—अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुखको सुख, स्वरूप से भिन्न शरीर इन्द्रिय और चित्त जो अनात्म वस्तुयें हैं उन्हें आत्म स्वरूप (अपना रूप) मानना मिथ्या ज्ञान या अविद्या कही जाती है विपर्यय ज्ञान अविद्या है।

सं०—अस्मिता क्या वस्तु है।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

प० क्र०–(दृग्, दर्शन, शक्त्योंः) दृक् शक्ति और दर्शन शक्ति का (एकात्मता, इव,) एक रूप सा हो जाना (अस्मि-ता) है।

भा०—पुरुष देखने वाला है बुद्धि दर्शन कराने वाली है। पुरुष

भोक्ता तथा बुद्धि भोग्य है यह परस्पर सर्वथा भिन्न हैं परन्तु इन दोनों का एक रूप सा भेद रहित प्रतीत होना अस्मिता क्लेश है इसी को हृदय-ग्रन्थि कहते हैं यही पंच पर्वाअविद्या का एकाङ्ग है।

सं०—विवेकोदय से ज्ञान होकर राग द्वेश अभिनिवेश हट जाते हैं अतः प्रमाणित हुआ कि अविद्या अस्मता की उत्पादि काहै यही राग द्वेश का मूल है अत=राग किसे कहते है

सुखानुशयी रागः ॥ ७

प० क्र०-(सुखा, ऽनुशयी) सुख के साथ लिपटा हुआ (राग=) राग है।

भा०—जिस वस्तु से सुख लाभ किया हो और उस सुख का स्मरण कर सुख साधान एवं उस में ममता अथवा तृष्णा उत्पन्न हो वह राग कहलाता है ।

सं०—राग का विरोधी द्वेष है उसका लक्षण ।

दुखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

प० क्र०-(दुखा ऽनुशयी) दुख के साथ लिपटा हुआ (द्वेष=) द्वेष होता है।

भा०—जिस वस्तु से दुख का अनुभव हो उसकी संस्मृति करके उस में दुख तथा साधन में अमर्श (क्रोध) वह द्वेष सज्ञक है।

सं०—अभिनिवेश की जड़ क्लेष है अतः उसका लक्षण ।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ।६

प० क्र०—(स्वरस वाही) बहन धर्मवान (स्वभाव से रहने वाला) (विदुषः अपि) ज्ञानी के लिये भी (तथा रूढः वैसे प्रसिद्ध अभिनिवेशः) अभिनिवेश कहलाता है ।

भा०—प्राणी मात्र अपने अस्तित्व को चाहता है कि मैं ही बना रहूँ परन्तु इस में जो मरण भय अथवा सत्ता के नाश का भाव है यही अभिनिवेश कहा जाता है । यह मरने का डर भीतर से ही बाहर को निरन्तर बहता है यह स्वभाविक प्रवाह है। मृत्यु किसी ने नहीं देखी न सामने आकर किसी को उसने मारा परन्तु जीवन रक्षा के लिये अदृष्ट मृत्यु से डरना अभिनिवेपता है । यह बड़े विद्वान् से मूढ पर्यन्त और चींटी से हाथी तक एक सी है ।

सं० क्लेशों को दूर कैसे किया जावे ।

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ।१०

प० क्र०—(ते) वह (क्लेश) (प्रति प्रसव हेयाः) अपने कारण में लीन होने कारण त्याज्य हैं (सूक्ष्माः) सूक्ष्म ।

भा—क्लेश सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार हैं उनमें उन सूक्ष्म क्लेशों को जो अपने कारण में लय होजाने वाले हैं त्याग न करने योग्य हैं क्योंकि वह कारण लीन कि क्लेश दुखदायी हैं और स्थूल क्लेश के संपर्क से बचने के

लिये चित्त धारण योग कहा ही गया है अतः दोनों पूर्वोत्तर त्याग ने योग्य हैं।

सं०—उन स्थूल सूक्ष्म क्लेशों के नष्ट होने के कार्य।

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ।११

प० क्र०-(ध्यान, हेयाः) ध्यान से त्याग ने योग्य (तद्, वृत्तयः) उन की (स्थूल) वृत्तियां।

भा०—स्थूल क्लेश क्रिया अनुष्ठान योग द्वारा सूक्ष्म हो जाते हैं उन्हें ध्यान में लाना इस को फिर इतना न्यूनाति न्यून करना कि सूक्ष्म सूक्ष्म होते २ अपने दोष योगी को साक्षात् भासित होने लगें और जब तक उनका बीज नाश न हो जावे निरन्तर उद्योग करते रहना क्लेश से बचना है। सूक्ष्म क्लेश का नाश केवल निर्बीज समाधि में होता है कि जहां आत्मा अपने रूप में अवस्थित होता है क्योंकि उस दशा में चित्त का कुछ काम नहीं रह जाता अतः यह सूक्ष्म क्लेश अपने कारण में विलीन हो जाते हैं यही प्रति प्रसव कहा जाता है।

सं०—क्लेश क्यों त्याज्य है।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।।१२

प० क्र०-(क्लेश, मूलः) जिस की जड़ क्लेश है (कर्मा ऽऽ शयः) कर्मों की बासना (दृष्टा, दृष्ट जन्म वेदनीयः) दृष्ट और अदृष्ट जन्म में जानने योग्य।

भा०—पाप पुण्य में प्रवृति का कारण राग द्वेष और मोह है मूढ़ पुरुष राग में फंस कर पाप करता है विचार शील सुख की इच्छा से पुण्य। अतः यह पाप पुण्य चित्त भूमि में ऐसा वीज डाल देते हैं जिसका समय पर फल होता है यही वीज वासना कहलाती है यह अपूर्व और अदृष्ट फल कर्माशय कहे जाते हैं। यही धर्माधर्म हैं। इसो से आवागमन–चक्र चलता है।

सं०—वर्त्तमान तथा भविष्यत में जो फल मिलता है वह क्या है।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥१३

प० क्र०–(सति होते हुये (मूले) जड़के (तद्व, विपाकः) उसका फल (जात्या, ऽऽ पुर, भोगाः) जाति आयु और भोग (है)

भा०—मीमांसक अपूर्व और नैय्थायिक जिसे अदृष्ट कहते हैं उन कर्म फलों से जो कर्माशय बनता है उसका फल जाति, आयु और भोग है अर्थात् प्रत्येक उत्पन्न हुये जीव को किसी जाति (अंडज, स्वेदज, उद्भिज और (जरायुज) में किसी नियत काल के लिये जिसको आयु कहते हैं किसी भले या वुरे कर्मों के भोगने को जाना पड़ेगा यही तीन जन्मे हुये जीव के प्रत्यक्ष काम हैं यह सव पूर्व वासनानुसार मिलता है। संचित कर्म या कर्माशय है जिसकी जड़ क्लेश हैं यह विवेक ख्याति से ही कट सकती है।

सं०—जाति, आयु, और भोगकर्मों के अनुसार मिलते हैं।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् १४

प० क्र०—(ते) वे (ह्लाद परिताप, फलाः) सुख दुख फल वाले हैं पुण्यापुण्य हेतु त्वात क्योंकि उससे पुण्य और पाप होते हैं।

भा०—हमारे शुभाशुभ कर्मों के फल अनुकूल हमें जाति, आयु, और भोग प्राप्त होते हैं। पुण्य कर्म शुभ फल और पाप कर्म दुख देते हैं इस लिये क्लेशों के समान इन्हें भी हटाना चाहिये।

सं०—विवेकियों के लिये विषय सुख भी अनुकूल नहीं हैं।

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥१५॥

प० क्र०—(परिणाम, ताप, संस्कार दुःखैः) परिणाम ताप और संस्कार के दुःखों से (गुण, वृत्ति विरोधात्) गुणों के स्वभाव विरुद्ध (च) और (दुःखम्) दुख (एव) ही (सर्वम्) सब (विवेकिनः) विवेकी के लिये।

भा०—परिणाम दुःख कि जो विषय सुख का ही परिणाम है क्योंकि उनके भोगने की तृष्णा बढ़ती है न्यून नहीं होती इस लिये विषयेन्द्रियों के सम्बन्ध को अमृत के स्थान में विष, समझना चाहिये। जो वस्तुयें हमें अभी सुखदायी हैं उनकी प्राप्ति तथा भोग में जो रुकावटें होने पर हृदय

संताप बढ़ता है उससे द्वेष बढ़कर सुख-हीन होती है। चित्त क्रोध, दोष सन्ताप मुक्त होने से दुख का अनुभव होना ताप दुःखिता है। सुख अनुभव से जो संस्कार चित्त पर पड़ते हैं उनकी स्मृति पुनरावृत्ति आदि आवर्तियों से राग, मोह, उनके इष्टानिष्ट भाव चिन्तवन से क्लेश प्रवाह वृद्धि का नाम संस्कार दुःखिता है।

सं०—भाव यह कि यह संसार दुःखमय है अतः दुख हेय (त्याज्य) हैं उसी क्रम मे हेय हेतु, और हानोपाय का वर्णन किया जाता है।

हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥

प० क०— (हेयम्) त्याज्य (दुःखम्) दुख (अनागतम्) आने वाला।

भा०—भोगा हुआ दुख भूत कालिक दुख, भोग में आरब्ध दुख वर्त्तमान दुख माना जाता है अब उपाय तो आने वाले दुख का होना चाहिये क्योंकि वह रोका जा सकता है। वर्त्तमान के अनुसार भविष्य और भूत के भोग का नाम वर्त्तमान होता है अतः भविष्य बनाया जा सकता है।

सं०—संसार दुख का कारण है क्या ?

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

प० क०—(द्रष्टृ, दृश्य योः) द्रष्टा और दृश्य का (संयोगः) मेल (हेय हेतुः) हेय कारण है।

भा०—चेतन पुरुष द्रष्टा है और बाह्य दृश्य रस रूपादि तथा अध्यात्म जगत में शरीर इन्द्रिय तथा बुद्धि है। जो स्वरूप को भूलकर जगत दृश्य देखने में मग्न रहता है यही द्रष्टा और दृश्य संयोग कहलाता है। यही संसार दुःख मूल है। जब पुरुष संयोग निवृत्ति से दृश्य से अपने को हटाकर स्व-स्वरूप में आवे तो संसार दुःख से निवृत्त हो जाता है।

सं०—वह द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध या संयोग हुआ अब दृश्य का रूप और उसका कार्य किम्वा प्रयोजन कहते हैं।

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूते-न्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थंदृश्यम् ॥१८॥

प० क०–(प्रकाश क्रिया, स्थिति शीलम्,) प्रकाश, क्रिया, और स्वभाव वाला (भूतेन्द्रियात्यकम्) भूत और इन्द्रिय रूप (भोगऽप वर्गार्थम्) भोग और अपवर्ग जिसका प्रयोजन हो वह (दृश्यम्) दृश्य है।

भा०—सत् रज और तम, इन तीनों गुणों के मेल से बना हुआ जो कुछ भी है उसे दृश्य कहा जाता है। सत्व गुण प्रकाश धर्म वाले हैं। रजोगुण क्रिया और कर्मात्मक हैं। तमोगुण स्थिति प्रकाश और क्रिया इन दोनों का अवरोध करना है यह तीनों गुण पांच महाभूत, पांचों सूक्ष्म भूत इन्हीं का कार्य है।

सं०—दृश्य का पूर्ण रूप बताने के लिये अवस्थाओं को कहते हैं।

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि ॥१९॥

प० क्र०—(विशेष, ऽविशेष लिंग मात्र ऽलिङ्गानि) विशेष, अवि-शेष लिङ्ग मात्र और अलिङ्ग (गुण पर्वाणि) गुणों की अवस्थायें।

भा०— पाचों स्थूल भूत, ग्यारह इन्द्रियां, यही सोलह विशेष कहे जाते हैं। पांच तन्मात्रायें जिनसे स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं छटा अहंकार जिससे इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं यह छः अविशेष हैं महतत्व लिंगमात्र कहा जाता है। गुणों की साम्यावस्था (प्रकृति) अलिङ्ग कहलाती है। प्रधान अव्यक्त और माया भी यही है। अलिंगावस्था प्रलय है उस से सृष्टि उत्पन्न होती है।

सं०—द्रष्टा का स्वरूप कहते हैं।

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥२०॥

प० क्र०—(द्रष्टा) देखने वाला (दृशि मात्र=) देखने की शक्ति मात्र (शुद्धः अपि) निर्विकार होकर (प्रत्ययाऽनुपश्यः) वृत्तियों के पीछे देखने वाला।

भा०—द्रष्टा पुरुष देखने की शक्ति है यह देखना आदि उसका स्वरूप नहीं किन्तु दोनों स्थानों पर वह शक्ति है जो मूल द्रष्टा शक्ति है जो चैतन्य धर्मवान है।

सं०—अब दृश्य का क्या प्रयोजन है।

तदर्थ एव दृश्यास्यात्मा ॥२१॥

प० क०-(तदर्थः एव) उसके हेतु ही (दृश्यस्य) दृश्य का (आत्मा) स्वरूप है।

भा०—यह समस्त दृश्य द्रष्टा पुरुप के मोक्ष के लिये है जब भोग और अपवर्ग पूर्ण हो जाते हैं तो पुरुष इस दृश्य को नहीं देखता। शान्त हो जाता है।

सं०—यह दृश्य मुक्त जीव का अर्थ साधन करके अन्य जिन कामों में लग जाता है उसे कहते हैं।

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् २२

प० क०-(कृता ऽर्थं प्रति) प्रयोजन सिद्ध हुये की (नष्टं अपि) नष्ट हुआ भी (अनष्टम्) नहीं नष्ट होता (तद्-ऽन्य साधारण त्वात्) क्योंकि वह दूसरे के साथ भागी होता है।

भा०—जब कोई द्रष्टा भोग और अपवर्ग को पूरा करके कृतार्थ होता है तो यह दृश्य उसके लिये कुछ कार्य नहीं करता क्योंकि यह दृश्य द्रष्टा मात्र का भागी है।

सं—द्रष्टा और दृश्य का रूप ज्ञान होने पर संयोग स्वरूप कहते हैं

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः २३

प० क०-(स्व, स्वामि शक्तयोः) स्वशक्ति एवं स्वामिशक्ति के (स्वरूपोपलब्धि, हेतुः) स्वरूप के प्रत्यक्ष करने का कारण (संयोगः) साथ है।

भा०—यह समस्त सारा पसारा दृश्य पुरुष के निमित्त है इस दृश्य का फल-भोग मोक्ष है उसका भोक्ता पुरुष है अतः पुरुष इसका अधिपति है यह दृश्य उसका स्व है, धन है और अधिकार वस्तु है यह दृश्य अपने आपको नहीं देख सकता पुरुष चेतन इस का द्रष्टा है। इस संयोग से दृश्य के स्वरूप की प्राप्ति है उसे भोग कहते हैं और द्रष्टाके स्वरूप की प्राप्ति का नाम अपवर्ग (मोक्ष) है यही स्वस्वामि भाव, दृश्य द्रष्टा भाव अथवा भोग्य भोक्तृ भाव सम्वन्ध है।

सं०—यह संयोग कैसे हो गया।

तस्य हेतुरविद्या ॥२४॥

प० क्र०—(तस्य) उसका हेतुः) कारण (अविद्या) अविद्या है।

भा० —पुरुष इस दृश्य से सर्वथा अतिरिक्त है परन्तु इस दृश्य से इतना सटा हुआ है कि अपने को उससे भिन्न नहीं माना। इस संयोग का हेतु मिथ्या ज्ञान है।

सं०—इस प्रकार हेय दुख है। हेय का कारण संयोग वह अपने कारण मिथ्या ज्ञान सहित कह दिया अवहानकी व्याख्या की जाती है।

तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् २५

प० क्र०—(तद ऽभावात्) अविद्या के अभाव से (संयोगा ऽभावः) संयोग का अभाव (हानम्) हान प्रद है यह (दृशेः) चैतन्य पुरुष का (कैवल्यम्) मोक्ष है।

सं०—द्रष्टा पुरुष यथार्थ में दृशिमात्र है इसमें दृक् और चिति दो शक्तियां हैं जो इस दृश्य से सर्वथा भिन्न हैं परन्तु इसका इसके साथ ऐसा सम्बन्ध होगया है कि वह अपने को भिन्न नहीं देखता और बाहर के दृश्य देखने से अपने को भूल जाता है यह भूल मूल अविद्या ज्योंही गई मेल का योग नष्ट हो जाता है इस संयोग के अभाव को हान अथवा हेय दुख है उसको त्याज्य करना है वह इस प्रकार होगा कि दुख के कारण की निवृति को जांवे दुख नहीं होगा। यही स्वरूप प्रतिष्ठा है यहीं वन्ध से मुक्त की समस्या हल होती है।

सं०—हेय की प्राप्ति का क्या उपाय है।

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥२६॥

प० क्र०–(विबेक ख्यातिः) विवेक ज्ञान अविप्लवा) निर्मल (हानो पायः) हान का उपाय।

भा०—शरीर मन, और इन्द्रियां तथा वुद्धि मुझसे भिन्न है मैं इन से सर्वथा भिन्न हूँ इस धारणा को विवेक ख्याति कहते हैं यही तीनों दुखों के दूर करने का उपाय है और मुक्ति का कारण है यही निर्मल ज्ञान हान का उपाय है। यह विवेक ज्ञान समाधि द्वारा आत्मा के साक्षात् करने से होता है।

सं०—इस विवेक ज्ञान वाले योगी की प्रज्ञा (वुद्धि) कैसी होगी।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥२७॥

प० क्र०–(तस्य) उस की (सप्तधा) सात भांति की (प्रान्त भूमिः) सात प्रकार की अत्युच्च प्रज्ञा–बुद्धि होगी।

भा०—पहिली प्रज्ञा यह है कि जो जानता था जान लिया अब कुछ जानना नहीं रहा। (२) दूर करने को था उसे दूर कर दिया (३) साक्षात् जिसे करना था कर लिया (४) जो बनाना था बना डाला (५) चित्त का अपना अधिकार पूर्ण हो गया (६) चित्त के बनाने वाले गुण अपने कारण में लय हो गये (७) गुणों के सम्बन्ध से अधिक ऊंचा पहुँचा स्वरूपमात्र ज्योति पुरुष यही कैवल्य है। यह जीवन्मुक्त दशा होते ही कुशल अथवा विदेह मुक्त होना है।

सं०—इस विवेक ख्याति की उत्पत्ति के क्या साधान हैं।

योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः

प० क्र०–(यो, ऽगां, ऽनुष्ठानात्) योग के अंग के अनुष्ठान से (अशुद्धि क्षये) अशुचिता नाश होने पर (ज्ञान दीप्तिः) ज्ञान के जागरण होने पर अविवेक ख्यातिः) आविवेक ख्याति तक।

भा०—ज्यों २ चित्त निर्मल होता जाता है त्यों २ ज्ञान की ज्योति बढ़ती है और जब तक प्रकृति पुरुष का विवेक ज्ञान नहीं होता तब तक योग के अंगो का अनुष्ठान जो

अशुद्धि के दूर करने का कारण है करते रहना चाहिये यही विवेक ख्याति के लाभ का भी कारण है। ×

सं०—योग के अंग कौन २ हैं।

यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि ।२९

प० क०–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रात्याहार, धारण ध्यान और समाधि आठ योगाङ्ग हैं।

भा०—योग करने वाले को इन आठ अंगों का अनुष्ठान करना पड़ता है इन अंगों में धारणा और ध्यान योग में रुकावट न पड़े उसके उपाय या साधन हैं। यम नियम से ध्यान और धारणा बनती है जैसे आसन दृढ़ योगी प्राणायाम करने में समर्थ होता है और प्राणायाम को स्थिरता से प्रत्याहार सधता है। इन आठ अंगों में उपाङ्ग (साधारण क्रिया सम्वादन) में तप और स्वाध्याय बिना श्रद्धा वीर्य के नहीं होता। धारणा ध्यान और समाधि विना अभ्यास और वैराग्य के असंभव है इस लिये यह उपाङ्ग भी सेवनीय है।

सं०—इन आठ अंगों में से

× विवेक ख्याति में नौ कारण है। उत्पत्तिकारण, स्थिति कारण, अभिव्यक्ति कारण, बिकार कारण, प्रत्यय कारण, प्रति कारण, वियोग कारण, ऊन्यत्व कारण, धृति कारण (व्यास भाष्य)

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥३०

प० क्र०–(अहिंसा, सत्या, ऽस्त्येय, ब्रह्मचर्या, ऽपारि ग्रहाः) जीव क्लेश, (अहिंसा) से मिथ्या विपर्यय (सत्य) चोरी रहित (अस्तेय) वीर्य रक्षा (ब्रह्मचर्य) स्वामित्व (अपरिग्रह) यम कहलाते हैं।

भा०—ज्यों २ यह ब्राह्मण (ब्रह्म का जानने वाला जीव) व्रतानुष्ठान से प्रमाद कृत हिंसा बीजों से बचता है त्यों २ निर्मल अन्तःकरण होकर चोरी पर पीड़न, असत्मता से बचता है और कामादि रोगों को ब्रह्मचर्य (स्वाध्याय, वीर्य रक्षा) से विजय कर किसी पदार्थ का भूमित्व अथवा अधिकार जमा कर व्यामोहित नहीं होता।

सं०—यमों की ऊंची अवस्था इन बातों से होती है।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥

प० क्र०–(जाति, देश काल समया, ऽनवच्छिन्नाः) जाति, देश काल और संकेत की सीमा रहित (सार्व भौमाः) सब दशाओं में होने वाले (महा व्रतम्) बड़े व्रत हैं।

भा०—यम का पालन सर्वत्र कठिन है इस लिये इन्हें एक सीमा में बांध दिया है वह सीमा जाति, देश काल और संकेत की है इससे अहिंसा नियम बन जाता है और

जिज्ञासु द्रोह करना छोड़ देता है क्योंकि जो काम होते हैं उनका किसी जाति (अण्डज, स्वदेज जरायुज, उद्भिज) से हिंसा अथवा अहिंसात्मक होगा यह किया कर्म किसी देश (पृथ्वी, अन्तरिक्ष,आकाश) कहीं पर ही तो होगा जब होगा तो वह प्रातः मध्याह्न और रात्रि अथवा भूत भविष्य और वर्तमान काल में ही होगी। जब व्रत ले लिया जावेगा तो उससे हिंसा बन ही न पड़ेगी प्रयोजन अहिंसा व्रत हो जायगा इसी प्रकार शेष कर्म योगी को करने में सरल पड़ते हैं। यह महाव्रत वही लें कि जिन्हों ने संसार से लगाव छोड़ दिया है। न कि सब रुचियादि गृहस्थी वर्ग।

सं०—नियम साधना क्या है।

शौचसन्स्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः ॥३२॥

प० क्र०– (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, श्वर प्रणिधानानि) पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

भा०—भीतर बाहर की शुद्धि से (चित्त और शरीर) निर्मलता को प्राप्त होता है। इससे मान, मद-ईर्षा, निन्दा स्तुति से योगी बचता है और मैत्री की भावना उत्पन्न होती है अपने पास जो कुछ शरीर क्रिया निर्वाहार्थ है वही पूर्ण पर्य्याप्त है इस धारणां से दूसरे के वैभव, आदि रोगों

में उदासीनता होती है तृष्णा रहित हो जाता है। भूख, प्यास, शीत, ऊष्मा आदि द्वन्द सहने से तपश्चर्या बनती है। ओङ्कार उपासना (उद्गीथ जप) के समर्थक तथा उपदेशक मोक्ष ग्रन्थों की बारम्बार आवृति इससे विज्ञान और तत्व निष्ठा बढ़ती है जब यह दृढ़ता आती है तो योगी सब कुछ ब्रह्मार्पण करता है उसे ईश्वर प्रणिधान कहते हैं।❀

सं०—यम नियमों के पालन में बाधायें आने पर यह प्रतीकार करे

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥३३॥

प० क्र०–(वितर्क, बाधने) वितर्क से बाधित (प्रतिपक्ष भावनम्) प्रति पक्ष का ध्यान रखना चाहिये।

भा०—जो धर्म यम और नियम के विरूद्ध हैं अर्थात् उनके पालन करने करानेमें बाधक जैसे हिंसा झूंठ, चोरी व्यभिचार और परिग्रह आदि मिथ्याचार मात्र वितर्क कहलाते हैं यदि किसी निर्बलता वश जब वितर्क उत्पन्न होने लगें अर्थात् प्रतिस्पर्धा, प्रति हिंसा, बदला लेने के विचार और इसी प्रकार के प्रचण्ड उद्वेग आवेश आवें तो

---

*मनु भगवान ने, जल से शरीर शुद्धि, सत्य से मन की शुद्धि, ज्ञान और तप से भूतात्मा की और ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि बतलाई है। यह भी बतलाया है कि जिज्ञासु को चाहिये कि यमों का लगातार सेवन करता रहे न कि केवल नियम ही साधे जावें। क्योंकि केवल नियम पालन से यम नहीं पाले जा सकते। यद्यपि दोनों में भेद बतलाया गया है। परन्तु उनका परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है।

इन सबके प्रतिपक्षों पर विचार करें कि मैं तो अभय देने के लिये योग धर्म में गया हूँ वितर्कों से क्या लाभ जब ऐसा योगी चिन्तवन करेगा तो वितर्क फल दुख और अज्ञानता से बच जावेगा।

सं०—अब वितर्कों का स्वरूप, प्रकार, कारण, धर्म और फल क्या है !

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥३४

प० क०—(वितर्का) विकल्प संस्कार (हिंसा ऽऽ दयः) हिंसादि (कृत, कारिताऽनुमोदिताः) किये कराये और समर्थन हुये (लोभ, क्रोध, मोह पूर्वाकाः) मोह, लोभ, क्रोध के जो कारण (मृदु मध्याऽधि मात्राः) मृदु, मध्य, और तीव्र, (दुःखा ऽज्ञाना ऽनन्त फलाः) दुख और अज्ञान का अन्त होना (इनि) यह (प्रतिपक्ष, भावनम्) प्रतिपक्ष का चिन्तन कहलाता है।

भा०—कृत, कारित, और अनुमोदित तीन प्रकार की हिंसा कहलाती है। अपने हाथों की गई कृत। किसी से कराई गई कीरत। दूसरे की हिंसा का समर्थन अनुमोदित। यह लोभ, क्रोध और मोह से होती है। मृदु हिंसा जैसे गाय के बच्चे को उसके शरीर भरण पोषण योग्य दूध न देकर लोवा, फूंका, और अकोर तथा अन्य हिंसक

उपायों से दूध निकाल कर गाय और बच्चे को हानि पहुंचाना या राजनैतिक इसी प्रकार के प्रजा शोषता के कार्य। यह मृदु हिंसा मध्य हिंसा तीव्र हिंसा भेदों से २७ प्रकार की होती है इनके अकान्तर भेद से ८१ प्रकार पाये जाते हैं। यह उत्तरोत्तर हिंसा योगी की वृत्ति को यम नियम से विचलित करने से त्याज्य है।

सं०—कैसे पता चले कि यह संयमी और नियम शील है। उस के चिन्ह क्या हैं।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ॥३५

प० क०–(अहिंसा, प्रतिष्ठायाम्) अहिंसा में दृढ़ संयम होने से (तत् न्निधौ) उसके समीप (वैर त्यागः) वैर त्यागन माना जाता है।

भा०—जब योगी की अहिंसा में अचल मति हो जाती है तो अन्य प्राणियों के चित्त से योगी के प्रति दुर्भावना नहीं रहती इस लिये उनके समभाव होने से मृदुता बढ़ती है निर्वैर हो कर योगी निर्भय स्वच्छन्दता से हिंसक पशुओं में उनके सजाति की भांति उनमें विचर सकता है।

सं०—सत्य की क्या कसौटी है !

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥३६

प० क०–(सत्य प्रतिष्ठायाम्) सत्य में दृढ़ स्थिति होने से (क्रिया, फला,ऽऽश्रयत्वम्) क्रिया और फल का आश्रय बनता है।

भा०—योगी का कहा हुआ सब सत्य होने लगता है क्योंकि उस की सत्य धर्म में दृढ़ स्थिति हो जाती है उसकी वाणी क्रिया आश्रयवान होकर फलने लगती है।

सं०—अस्तेय से लाभ क्या है!

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥३७

प० क०—(अस्तेय प्रतिष्ठायां) चोरी त्यागन में दृढ़ स्थिति होने पर (सर्व रत्नो पस्थानम्) सर्व रत्न उपस्थित रहते हैं।

भा०—चोरी के अनेक भेद हैं जिनका प्रभाव जिज्ञासु पर ममता का पड़ता है वह दूसरे की वस्तु अपनी करना चाहता है वह भी प्रवलता से और छुप कर परन्तु जब ज्ञानी सर्व विश्व को ब्रह्ममय देखता है तो सारी विश्व-रत्न राशि उसके दरवार के खद्योत (पटवीजते) बन जाते हैं।

सं०—ब्रह्मचर्य पालन का क्या प्रभाव है।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥३८॥

प० क०—(ब्रह्मचर्य प्रतिष्टायाम्) ब्रह्मचर्य में दृढ़ता होने पर योगी को वीर्य लाभ होता है।

भा०—ब्रह्मचर्य से शरीर, इन्द्रियाँ और मन शक्तिशाली हो जाते हैं ब्रह्मचारी की वाणी वलवान और समर्थ हो जाती है।❀

---

* ब्रह्मचर्य का वीर्य रक्षा ही अर्थ नहीं है किन्तु स्वाध्याय और योगाभ्यास भी है योगी को इन सब से प्रौढता आ जाती है।

सं०—अपरिग्रह क्या है।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥३९॥

प० क०—(अपरिग्रहस्थैर्ये) अपरिग्रह सध जाने पर जन्म कथन्ता सम्बोधः) जन्म क्यों हुआ इसका ज्ञान हो जाता है।

भा०—अपरिग्रह में दृढ़ता होने से तीनों जन्मों का ज्ञान हो जाता है यहां ही संस्कारों का साक्षात् किया जाता है अर्थात् विस्मृति की स्मृति हो आना साक्षात्कार कहा जाता है यमों की स्थिरता में सिद्धियां भी होती हैं।

सं०—नियम पालन से यह सिद्धियां होती है।

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥४०॥

प० क०—(शौचात्) पवित्रता से (स्वांगजुगुप्सा) अपने अंगों के प्रति निर्ममता और (परैः) अन्यों के (असंसर्गः) साथ का अभाव होता है।

भा०—जब योगी यह देखता है कि बारम्बार अंग शुचि करते हुये भी मलिनता शेष है तो वह उसे सतत अशुद्ध समझ कर उसके प्रति निर्मोह (उदासीन) हो जाता है इसी उदासीनतावश वह औरों के संग दोष से भी बच जाता है यह बाह्य शुद्धि उसे मिल जाती है।

सं०—अभ्यन्तर शुद्धि कैसे २ कारणों से मिलती है।

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय-जयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥४१॥

प० क्र०–(सत्त्व शुद्धि सौमनस्यै काग्रयै, न्द्रिय जया, ऽऽत्म दर्शन योग त्वानि,च) अन्तः करण की शुद्धि मन की पवित्रता एकाग्रता (स्थिरता) इन्द्रियों पर अधिकार तथा स्वरूप ज्ञान की योग्यता लाभ करता है।

भा०–चित्तके विचार नष्ट होने से शुद्ध एवं स्वच्छ हो जाता है यह स्वच्छता एकाग्रता लाती है क्योंकि चित्त के उद्वेग के कारण ही एकाग्रता नहीं बनती इस एकाग्रता से मन वशीकार होता है मन पर अधिकार होते ही इन्द्रियाँ अपने व्यापारों को छोड़ देती हैं इस प्रकार योगी अन्तः करण चतुष्टय को जीत कर आत्म दर्शन करता है।

सं०—संतोष से क्या लाभ है।

संतोषादनुत्तमसुखलाभः ॥४२

प० क्र०–(सन्तोषात) संतोष से (अनुत्तम सुख लाभः) परमोत्तम सुख प्राप्त होता है।

भा०—संतोष योग से शान्ति आकर चित्त स्थिर हो जाता है और भीतर इतना सुख सम्पादन करता है कि वाह्य विषय सुख तुच्छ प्रतीत होते हैं यह मन की पराकाष्ठा की वशीकरण भूमिका है उसके विपरीत असंतोष दुखदाई है।

सं०—तप से फिर क्या लाभ ।

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥४३॥

प० क्र०–(काये, न्द्रिय सिद्धः) शरीर इन्द्रियों की सिद्धि (अशुद्धि क्षयात्) अशुद्धि नाश होने से (तपसः) तप से ।

भा०—तप करने वाले की इन्द्रियों के मल विचार एवं शरीर के दोष अस्वस्थता आदि दूर हो कर शुद्ध मन अन्तः करण एवं शरीर नीरोग चुस्त और हलका हो जाता है और इन्द्रियां दूर तक देखने की शक्ति पाती हैं ।

सं०—फिर स्वाध्याय से क्या लाभ होगा ।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥४४॥*

प० क्र०–(स्वाध्यायात्) स्वाध्याय से (इष्ट देवता संप्रयोगः) इष्ट दिव्य गुण कर सम्बन्ध होता है ।

भा०—स्वाध्याय एक भोग है कि जिससे इष्ट ज्ञान की प्राप्ति होती है प्रत्येक ज्ञान का एक वाह्य अभिमानी देवता होता है उसके भीतर अभिमानी परमदेव भगवान के दिव्य ज्ञान की प्राप्ति स्वाध्याय द्वारा ही होती है श्रद्धा देवी का निवास दृढ़ होता है और स्वाध्याय साक्षात्कार होने से चित्त का भ्रमात्मक चाञ्चल्य नष्ट होकर व्यवसा यात्मिका बुद्धि हो जाती है ।

---

* देवता, ऋषि, और सिद्ध स्वाध्याय शील के दर्शनों को जाते हैं और उसके कार्य सहायक भी होते हैं (व्यास भाष्य)

सं०—समाधि में क्या होता है।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥४५॥

प० क्र०—(समाधि सिद्धः) समाधि सिद्धि (ईश्वर प्रणि धानात्) ईश्वर प्रणिधान से होती है।

भ०—जब योगी ससस्त कर्मों को ईश्वरार्पण करके करता है तो उस (ईश्वर) के प्रसाद अथवा अनुग्रह से उसके विघ्न उसका साथ छोड़ देते हैं और उसे ब्रह्मरूपता प्राप्त होती है यह समाधि में घुसने का लाभ है।

सं०—आसन क्यों लगाया जाता है।

स्थिरसुखमासनम् ॥४६॥

प० क्र०—(स्थिर–सुखम्) जो निश्चल सुखदेने वाला हो वह (आसनम्) आसन है।

भा०—जिस बैठक क्रिया से सुख पूर्वक स्थिरता प्राप्त होवे वह योगासन माना गया है, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वास्तिकासन, सोपाश्रमासन, पर्यंक समसंस्थान आदि ८४ भेद हैं इन में कुछ हठ योग के आसन हैं कुछ ध्यान योग के कुछ स्वाध्याय योग के कुछ जप योग के, कुछ जप योग आदि के हैं इस लिये योग की विभिन्न क्रियाओं से श्वास प्रश्वास गति पर प्रभाव पड़ता है किस आसन पर क्रिया का सम्बन्ध है ऐसा जान कर सिद्धि शीघ्र होती उलटा करने से सिद्धि में देर

हो नहीं लगती किन्तु जिज्ञासु को अश्रद्धा हो जाती है और रोग भी गले पड़ जाते हैं। इसे योगोपाय समझ कर नियम से करना चाहिये। क्योंकि आसन की स्थिरता एक योगि-सुख माना है।

सं०—इस योगि-आसन-सुख की प्राप्ति कैसे हो।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥४७॥

प०क्र–(प्रयत्न शैथिल्या, ऽनन्त समापत्ति भ्याम्) प्रयत्न की ढील और किसी अनन्त (असीम) पदार्थ लीनता होने से वह आसन सुख लाभ होता है।

भा०—जिन प्रयत्नों से शरीर धारण होता है उन्हें शिथिल कर देने पर अनन्त (ब्रह्म) में चित्त लय करने से जो देह का अभिमान छूट कर आसन दृढ़ता होती है उससे अचल सीधा निर्कम्प शरीर हो जाता है। और इसी को आसन की जीत कहते हैं। और यही ध्यान योग का परम उपाय है।

सं०—इस शरीर के निर्कम्प अचल का फल क्या है।

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥४८॥

प० क्र०–(ततः) तव (द्वन्द्वा ऽनभिघातः) द्वन्द्व के आघात नहीं लगते।

भा०—जब योगासन पर अधिकार हो जाता है तो फिर उसे सर्दी गर्मी, भूख, प्यास, वर्षा, लूह, कुछ नहीं सताते क्योंकि

वाह्य जगत से उसका सम्बन्ध नहीं रहता कि जिनके भय से योगी समाधि भ्रष्ट हो जाते है।

सं०—जब यह सब सिद्धियां प्राप्त हो गई फिर प्राणायाम करना चाहिये वह प्राणायाम क्या है।

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयो-र्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥४९॥

प० क्र०-(तस्मिन्, सति) उन उपायों के सिद्धयन्तर (श्वास प्रश्वासयोः) सांस के आने जाने की (गतिविच्छेदः) गति को रोकना (प्राणायामः) प्राणायाम है।

भा०—आसन पर विजय पा लेने पर प्राणों के रोकने का नाम प्राणायाम है जब तक आसन-दृढ़ न हो सफल प्राणायाम नहीं हो सकता।

सं०—प्राणायाम के भेद कहते हैं।

वाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः॥५०॥

प० क्र०-(वाह्य, भ्यन्तर स्तम्भ वृत्तिः) वाह्य वृत्ति अभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति (देशकाल संख्याभिः) देशकाल और संख्या से (परि-दृष्टः) देखा जाता है (दीर्घ सूक्ष्मः) लम्बा और हलका।

भा०—प्राणायाम तीन प्रकार का है वाह्य वृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति वाह्य वृत्ति प्राणायाम में नासिका से

स्वांस बाहर फैंक कर उसकी गति रोक दी जाती है अर्थात् सांस न लेना इसको रेचक प्राणायाम कहते हैं। अभ्यान्तर वृत्ति में बाहर से भीतर सांस खींच कर रोक ली जाती है इसे पूरक प्राणायाम कहते हैं। यह तो सांस की गति रोकनी हुई अब तीसरे में स्तम्भ वृत्ति करना कि न बाहर से भीतर न भीतर से बाहर सांस फैकना किन्तु भीतर को भीतर और बाहर की बाहर जहां की तहां सांस ठहराना इसे कुम्भक प्राणायाम कहते हैं। यह योगी ज्यों २ अभ्यास करता जाता है। देश, काल और संख्या क्रम से थोड़ा (सूक्ष्म) बहुत (लम्बा) होता जाता है। ध्यान रखना पड़ता है कि धीरे २ अभ्यास से परिमाण बढ़ाया जावे इसमें कितने सांसो का एक सांस बनता है २४ स्वांसों का एक सांस बन जाने पर अभ्यास कहलाता है।

सं०—चौथा प्राणायाम और भी है।

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥५१॥

प० क्र०—(बाह्या, ऽभ्यन्तर विषया—ऽऽ क्षेपी) बाह्य और भीतर के विषय का लांघने वाला (चतुर्थः) चौथा प्राणायाम है।

भा०—रेचक प्राणायाम का सम्बन्ध बाहर से है क्योंकि इसमें प्राणों को बाहर ठहराते हैं। पूरक में भीतर सांस ठहरानी पड़ती, इस लिये इसका आन्यन्तर सम्बन्ध है

इन दोनों के अभ्यास से कुम्भक प्राणायाम क्रिया कहते हैं इसे सहित कुम्भक भी कहते हैं। इस सहित कुम्भक में रेचक और पूरक की अपेक्षा रहती है जब इसकी शक्ति बढ़ जाती है तो बिना रेचक और पूरक के प्राण ठहराये जा सकते हैं इन दोनों भांति के प्राणायाम को लांघने वाल चौथा कुम्भक कहा जाता है।

सं०—चौथे प्राणायाम का फल क्या है।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥५२॥

प० क्र०—(ततः) प्राणायाम से (क्षीयते) नाश होता है (प्रकाशाऽऽवरणम) विवेक ज्ञान का ढकना उठ जाता है।

भा०—विवेक ज्ञान प्रकाश पर जो अविद्या धन पटल का आवरण आकर योगी को क्लेशित करता है वह प्राणायाम अभ्यास से निरन्तर अभ्यास से वह परदा हट जाता है और विशुद्ध विवेक ज्ञान का सूर्य दैदीप्यमान होने लगता है।

सं०—प्राणायाम का फल दूसरा और भी है।

धारणासु च योग्यता मनसः ॥५३॥

प० क्रा०—(धारणासु, च) धारणाओं में और (योग्यतामनसः) मन की योग्यता उद्भूत होती है।

भ०—जितनी धारणायें हैं इस प्राणायाम के अभ्यास से ही मन उन समस्त धारणाओं के योग्य बन जाता है। जहां

चाहे वहां ध्यान स्थापित कर सकता है इतस्ततः नहीं जाता।

सं०—प्रत्याहार का क्या लक्षण है।

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥५४॥

प० क्र०-(स्व, विषया, ऽसम्प्रयोगे) निज विषय से असम्बन्धित होने से (चित्तस्य) चित्त के (स्वरूपा ऽनुकारः इव) स्वरूप की छाया सा (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियों का (प्रत्याहारः) प्रत्याहार है।

भा०—चित्त के आधीन वाह्येन्द्रिय वाह्य विषयों को ग्रहण करती है यह प्राणायाम अभ्यास से चित्त जब बाहर की ओर से रुक जाता है तो चित्त की भांति इन्द्रियां भी अवरुद्धि हो जाती हैं अतः इस चित्त की अन्तर्मुख वृत्ति होने से इन्द्रियां वाह्य विषय विमुख होकर चित्त के स्वरूप अनुरूप सा बन जाता है यही प्रत्याहार है।

सं०—इस प्रत्याहार का क्या फल है।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥५५॥

प० क्र०-(ततः) उस प्रत्याहार से (परमा) परमोत्तम (वश्यता) अधीनता में = वशवर्तिता (इन्द्रियाणाम) इन्द्रियों का।

भा०—जिज्ञासुओं के अनुभव भेद से कोई शब्दादि विषयों में न फसना इन्द्रियजीत है किसी के अनुभव में वेदाविरुद्ध

विषयां का सेवन और तद्विरुद्ध विषयों अप्रवृत्ति इन्द्रिय जय है तीसरे शब्दादि भोग्यों को अपने अधिकार पूर्वक भोगने को इन्द्रिय जय मानते हैं परन्तु विषयों से सम्बन्ध रहने से भूमि बिगड़ जाने का भय है इसलिये चित्त के ही निरोध से सर्व इन्द्रिय वश्यता सम्भव है फिर कोई आशंका नहीं रहती। यही प्रत्याहार का फल है।

इति श्री पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित कृते भाषा भाष्ये योग दर्शन साधन पादः समाप्तः।

❀ ओ३म् ❀

अथ विभूति पादारम्भ्यते ।

सं०—धारणा ध्यान और समाधि का वर्णन यहाँ किया जाता है धारणा किसे कहते हैं ।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥१॥

प० क्र०—(देश, बन्धः) देश में बाधना (चित्तस्य) चित्त का धारणा है ।

भा०—धारणा से चित्त प्राणायाम के योग्य बनता है योगी बाह्याभ्यन्तर किसी स्थान में चित्त की अचलता के लिये बाँधता है । अभ्यन्तर में नाभिचक्र, हृत्पुण्डरीक, मूर्द्धा स्थिति ज्योति में, नाक के अग्र भाग में अथवा जिह्वा के आगे के भाग में टिकाना धारणा है ।

सं०—अब वृत्ति की एकाग्रता को कहते हैं ।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥२॥

प० क्र०—(तत्र) वहां कि जहां चित्त को लगाया है उस प्रदेश में (प्रत्ययै, कतानता) वृत्ति की एकाग्रता ध्यान है ।

भा०—जिसमें चित्त को धारण किया गया है उसी प्रदेश में उस की वृत्ति का एकाग्र होना अर्थात् उसका उत्तरोत्तर उदय होता आना और अन्य प्रवृति का आना ध्यान है

सं०—समाधि किसे कहते हैं ।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्य-मिव समाधिः ३

प० क्र०-(तत, एव) वही ध्यान (अर्थमात्र निर्भासम्) जिसमें अर्थमात्र भासित होता है (स्वरूप, शून्यम् , इव) स्वरूप से शून्य सा (समाधि) है।

भा०—जहाँ ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, ध्याता, ध्यान, ध्येय जब एक से भासित हों तो उसे ध्यान कहते हैं वहाँ केवल ध्येय मात्र का लगाव रह जाता है और उसका रूप शून्य प्रतीत होता है यही समाधि है।

सं०—संयम क्या पदार्थ है।

त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

प० क्र०-(त्रयम्) तीनों (एकत्र) एक विषय में (संयम-) संयम से

भा०—जब एक ही विषय में धारणा ध्यान और समाधि एकत्रित हो जाते हैं अर्थात् जहां जिस विषय में योगी की धारणा है उसी ध्यान और उसी में चित्त की समाधि हो जावे तो इस एको करण का नाम संयम है।

सं०—इस संयम का क्या फल है।

तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥५॥

प० क्र०(तत्—जयात) उसकी विजय से (प्रज्ञा, ऽऽलोकः) प्रज्ञा का प्रकाश होता है।

भा०—ज्यों संयम की स्थिति–दृढ़ होती जाती है त्यों समाधि प्रज्ञा प्रकाश बढ़ता है।

सं०—संयम का उपयोग क्या है।

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥६॥

प० क्र०–(तस्य) संयम का (भूमिषु) भूमियों में (विनियोग) प्रयोग करना चाहिये ।

भा०—योग की मनोन्नति अवस्थाओं में नीचे की भूमि को जीत कर आगे की भूमि में संयम करना ठीक है क्योंकि पहिले नीचे की भूमि पर संयम किये बिना आगे भूमि में संयम करने से उसका सफल योग नहीं होगा इस लिये सवितर्क में जो निचली भूमि है उसमें संयम कर आगे निर्वितर्क में संयम करना होगा। इसके उत्तर सविचार और निर्विचार में संयम होने से पूर्ण प्रज्ञा प्रकाश होता है।

सं०—इनमें अन्तरंग और वहिरंग कौन २ हैं।

त्रयमन्तरङ्गम् पूर्वेभ्यः ॥७॥

प० क्र०–(त्रयम्) तीनों (अन्तरङ्गम्) भीतर का निकट साधन (पूर्वेभ्यः) पहिलों का (है)

भा०—योग के आठ अंग है उनमें पहिले पांच (यम, नियम आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार) वहिरंग है तथा धारण, ध्यान और समाधि अन्त रंग है क्योंकि पूर्व अंग केवल चित्त को निर्मल करते हैं परन्तु पिछले योग के साक्षात साधन हैं।

सं०—फिर भी इन साधनों के कुछ और भेद हैं।

तदपि बहिरङ्गम् निर्बीजस्य ॥८॥

प० क्र०–(तत्, अपि) धारण ध्यान समाधि भी (वहिरंङ्गम्) वाहर का साधन अंग हैं (निर्वीजस्य) निर्वीज का।

भा०—धारण ध्यान, ससाधि यह सम्प्रज्ञात योग का अन्तरंग अंग है और निर्वीज (असम्प्रज्ञात) का वहिरंग अंग है पर वैराग्य के लिये असम्प्रज्ञात साक्षात् साधन है न कि संयम।

सं०—निर्वीज समाधि से चित्त रुक जाता है तो क्या परिणाम होता है।

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥९॥

प० क्र०–(व्युत्थान, निरोध, संस्कारयोः) व्युत्थान और निरोध के संस्कार का (आविर्भाव, प्रादुर्भावौ) प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष होना (निरोध, क्षण चिन्ता ऽन्वयः) निरोध होने के समय पीछे चलना (निरोध, परिणामः) निरोध सम ा का फल है।

भा०—चित्त की सारी वृत्तियां निर्वीजावस्था में निरूद्ध हो जाती है उस सवीज सम्प्रज्ञात में का साक्षात्कार निर्वीजा वस्था में निरूद्ध हो जाता है अतः निर्वीज दशा में प्रतीत कर निष्शेष होता है और व्युत्थान की वृत्तियाँ

बन्द हो जाती हैं यतः । व्युत्थान के संस्कार चित्त के ही धर्म हैं, परन्तु वृत्तियों के अवरोध से वह नहीं रुकते क्योंकि वह वृत्ति रूप नहीं होते, इसी भाँति निरोध के संस्कार भी चित्त के धर्म हैं जब निरोध क्षण में चित्त के भीतर परिणाम होता है तब निरोध संस्कार चित्त के भीतर उत्पन्न होते हैं और व्युत्थान के संस्कार दबते हैं उस दशा में व्युत्थान नष्ट होता है और निरोध संस्कार पड़ता है। उस अवस्था में एक चित्त के संस्कारों का परिवर्त्तन निरोध परिणाम होता है क्योंकि निरोध समाधि में केवल चित्त में संस्कार शेष रहते हैं।

सं०—निरोधावस्था में प्रवल निरोध संस्कारों से व्युत्थान संस्कार के दबने से क्या परिणाम होता है।

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥१०॥

प० क्र०-(तस्य) चित्त का (प्रशान्त, वाहिता) शान्तिपूर्वक वहना (संस्कारात्) संस्कार से (होता है)

भा०—जब निरोध संस्कार प्रबल होता है यह उसी दशा में हो सकेगा कि जब उस का निरन्तर अभ्यास किया जावे इसी अभ्यास से व्युत्थान संस्कार दबते हैं तब निरोध संस्कारों की प्रवृत्त परम्परा स्थान पाती है यही चित्त का एक रस बहना अथवा चित्तका प्रशान्त बहन है एक रसानाद इसी को कहते हैं परन्तु यदि सतत्

अभ्यास न किया जावेगा तो निरोध संस्कार मन्द ही पड़ेंगे किन्तु व्युत्थान संस्कार फिर आ दबावेंगे।

सं०—सम्प्रयात समाधि में चित्त का क्या परिणाम होता है।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयो चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥११॥

प० क्र०-(सर्वार्थ तैका ग्रतयोः) विक्षिप्तता और एकाग्रता का (क्षयो, दयो) उदय और विनाश (चित्तस्य) चित्त का (समाधि परिणामः) समाधि परिणाम होता है।

भा०—चित्त समस्त विषयों में चलता रहता है तब एक विषय में टिक जाना चित्त का एकाग्र धर्म कहा गया है। समाधि में सब से पूर्व चित्त का यह चंचल धर्म दब जाता है और दूसरा अचंचल धर्म स्थिरता का होना यही समाधि-परिणाम समझना चाहिये।

सं०—अभ्यास से सर्व विषयों का क्षय हो जाता है तब चित्त की समाहित दशा का क्या परिणाम होता है।

ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्यौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥१२॥

प० क्र०-(ततः, पुनः) तब फिर (शान्तो दितौ) शान्त और उदित (तुल्य, प्रत्य यौ) सम वृत्तियाँ (चितस्य) चित्त के (एकाग्रता, परिणामः) एकाग्रता का परिणाम है।

भा०—चित्त विक्षेप के दब जाने से चित्त एकाग्र हो जाता है इस एकाग्रता में भी चित्त परिवर्तित होता रहता है परन्तु विक्षिप्तता में चित्त एक विषय से दूसरे में दौड़ता है वह इस एकाग्रता में नहीं होता परन्तु एक वस्तु को पकड़ लेता है और उसी में लगा रहता है। वृत्तियाँ भी चित्त के परिवर्त्तन से बदलती है परन्तु वह प्रशान्त चित्तोदय के साथ इनका भी क्रमशः उदय होता रहता है और समाधि अभंग रहती है यही चित्त एकाग्रता का परिणाम है।

सं०—भूत और इन्द्रियों के क्या परिणाम हैं।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणा-
वस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥१३॥

प० क्र०—(एतेन) इससे (भूते, न्द्रियेषु) भूतों तथा इन्द्रियों में (धर्म, लक्षणा, ऽवस्था, परिणामा) धर्म लक्षण और अवस्था के फल (व्याख्याताः) वर्णन किये गये समझना चाहिये।

भा०—पांच भूतों और इन्द्रियों में तीन परिणाम (परिवर्त्तन) होते हैं धर्म लक्षण तथा अवस्था इन परिणामों के नाम हैं। योगी को निरोध, शान्त व्यहिता, तथा समाधि और एकाग्रता परिणाम जानने पर भूतों तथा इन्द्रियों के परिणाम भिन्न भिन्न अनुभव करने होते हैं इसलिये वह जानने लगता है कि असत् की उत्पत्ति

भा० —और सत का स्वरूप नाश नहीं होता यही क्रम एक से दूसरे क्रम में अहर्निशि बदलता रहता है यही संसार चक्र है। समस्त संसार धर्म परिणाम है जैसे कुम्हार एक मिट्टी के गोले का घड़ा बना डालता है वही गोला अन्य छोटे बड़े नाना पात्रों के रूप में आता है परन्तु समस्त आकार मिट्टी के ऊपर है भीतर मिट्टी ही है मिट्टी (द्रव्य) धर्मी है और घड़ा आदि धम है यही एक दूसरे धर्म का आविर्भाव तिरोभाव उस धर्मी (मिट्टी रूपी द्रव्य) का धर्म परिणाम कहा जाता है। अर्थात् द्रव्य में परिणाम नहीं होता धर्म (आकार) में होता है। लक्षण परिणाम जैसे मिट्टी का बाह्य आकार घट है। घट धारणा के अतिरिक्त उसमें दूसरी धारणा होना ही असम्भव है यह आकार उसमें निहित था। अब नया इसलिये कहा गया कि अब प्रकट हुआ है। अर्थात् मिट्टी का गोला पहले अव्यक्त था अब व्यक्त आकार में (प्रकट) होने से उस छिपे धर्म का आविर्भाव उस धर्म का लक्षण परिणाम के अतिरिक्त कुछ नहीं। यद्यपि यह अनागत, वर्त्तमान और अतीत धर्मवान कथन से विभक्त है परन्तु तीनों कालों में एकसा बना रहता है यही द्रव्य का लक्षण परिणाम है। अवस्था परिणाम में उस मिट्टी के घड़े का नया पुराना संज्ञक भाव परिवर्तन में आने से जब वह वर्तमान में प्रकट हो गया कहा गया तो वर्तमान

लक्षण में आया ज्यों २ सूखता गया वर्तमान में उसका पकना दृढ़ होना, उसका रूपान्तर है पकने के पीछे धीरे धीरे भतिज्य तक पहुंचने तक जीर्ण शीर्णता धर्म को ग्रहण करता गया यह दुबेलता वर्तमान लक्षण धर्म की दृढ़ता तथा लगातार प्रतिक्षण इसी धर्म का होता रहना अवस्था परिणाम कहा जाता है। यह परिणाम अपने समस्त परिणामों के पीछे-पीछे लगा रहता है. यही धर्म लक्षण और अवस्था चित्त की असम्प्रज्ञात और असम्प्रयात अवस्था में भी रहते हैं यही क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त चित्तावस्था की है सार यह है कि समस्त परिणामों में द्रव्य अपरिवर्तित रहता है केवल उसकी स्थिति परिवर्तन में आती है यही संस्थिति नष्ट और उत्पन्न होती है! द्रव्य न उत्पन्न होता है न नष्ट होता है। समस्त दृश्य भिन्न भिन्न संस्थिति मूलमात्र है यह मूल द्रव्य सर्वत्र सत्व, रजस् और तमस् कहलाता है ।

सं०—जिसमें यह तीन प्रकार का परिणाम होता है उस धर्मी का क्या लक्षण है।

शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपातीधर्मी ॥१४।

प० क्र०—(शान्तो, दिता, ऽव्यपदेश्य, धर्माऽनुपाती) भूत, वर्तमान और भविष्यत धर्मों में साथी रहने वाला धर्मी कहलाता है ।

भा०—धर्मी द्रव्य बतलाया गया है और धर्म उस द्रव्य के विभिन्न आकार कहे गये हैं। धर्मी सामान्य रूप द्रव्य समस्त आकारों में अनुगत (साथी) है) अगले विषयों के प्रति वही धर्मी बन जाता है इसमें जो धर्म अपना-अपना कार्य करके नष्ट होते जाते हैं वह उसी में मिलते जाते हैं अर्थात् अव्यक्त होते जाते हैं उन्हें अतीत (भूत) अथवा शान्त कहते हैं। जो प्रकट (वर्त्तमान) में उदित अथवा व्यक्त हैं यह प्रत्यक्ष अथवा वर्त्तमान (संसार रूप) और जो अभी तक अव्याक्ताव्यक्त धर्म रहित अर्थात् प्रकट नहीं हुये अर्थात् शक्ति रूप से स्थित हैं आविर्भाव में हैं वह अव्यय देश्य अथवा अनागत किम्वा भविष्यत कहलाते हैं इन तीनों में साथ रहने वाला धर्मी कहता है। धर्म धर्मी से और धर्मी धर्म से कदापि प्रथक् नहीं होता। जो कुछ बन चुका (भूत) बना हुआ (वर्त्तमान) और बनने वाला (भविष्यत्) यह उस धर्मी के धर्म हैं यह एक २ धर्मी में अनेक अनेक रहते हैं और अपने अपने निमित्तों के संयोग से प्रगट होते हैं।

सं०—एक धर्मी के अनेक धर्म इस प्रकार होते हैं कि—

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥१५॥

प० क्र०—(क्रमा, ऽन्यत्वम्) क्रम भेद (परिणाम, ऽन्यत्वे) परिणाम भेद (हेतुः) कारण (है)

भा०—एक मिट्टी के बिभिन्न क्रम होते गये पहिले रज (चूर्ण) फिर गोला फिर घड़ा वही घड़ा टूटा तो पहिले कपाल फिर ठीकरी फिर पुनः चूर्ण तदुपरान्त दूसरा क्रम जैसा पहिले था आरंभ हो गया यही अनादि प्रवाह भाव विकारसृष्टिका है यही क्रम भेद से भिन्न भिन्न परिणामिनी प्रकृति है कि चूरण से गोला, गोला से घड़ा यह धर्म परिणाम का क्रम हुआ इसी घट का अनागत भाव वर्त्तमान भाव क्रम है वही वर्त्तमान से अतीत भाव क्रम में चला गया वह व्यक्ति (घट) वर्त्तमान में नहीं आता उस से विभिन्न व्यक्ति आना सम्भव है इसके विशेष जानने की जिज्ञासा वाले योगी करे वैशेषिक दर्शन से लाभ उठाना चाहिये।

सं०—संयम का विषय और उसकी विभूतियां बतलाते हैं। परन्तु पहिले परिणामों में संयम और उसकी सिद्धि की महिमा को समझाते हैं।

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥१६॥

प० क्र०–(परिणाम, त्रय, संयमात्) तीनों परिणामों में संयम करने से (अतीत, ऽनागत, ज्ञानम्) भूत और भविष्य का ज्ञान होता है।

भा०—योगी त्रैकालज्ञ इसी संयम से होता है कि जब वह धर्म, लक्षण और अवस्था परिणाम प्रति वस्तु में लक्ष्य रखते संयम करता है। परिणाम विषयों में धारणा

और ध्यान लगाने से परिणाम साक्षात्कार होता है उस साक्षात् से वस्तु जिस जिस अवस्था में हो कर जिस-जिस रूपान्तर को प्राप्त हो कर जितने काल तक पहुंचती है अतः योगी को जिस अवस्था में पहुंचेगी उसका ज्ञान हो जाता है।

सं०—संयम से सिद्ध होने वाली विभूतियाँ कहते हैं।

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतरध्यासात् संकरस्त-त्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७॥

प० क्र०—(शब्दा,ऽर्थ प्रत्ययानाम्) शब्द, अर्थ, और ज्ञान के (इतरेतरा, ऽध्यासात्) पारस्परिक भावना से (संकरः) संकर, और अभेद, भासित होता है (तत्, प्रविभाग, संयमात्) उन के विभाग में संयम से (सर्व, भूत, रुत, ज्ञानम्) सब प्राणियों के शब्द का ज्ञान होता है।

भा०—किसी वस्तु का जब नाम योगी के सम्मुख आता है तो उसको शब्द और इसका अर्थ तथा उसका ज्ञान तीनों एक ही न होने से अलग अलग भासित होते हैं जैसे गौ शब्द श्रवण से केवल उच्चारण मात्र व्यक्ति का नाम बोध कराता है उससे अर्थ लाभ, दूध और गोबर है यह ज्ञान बुद्धि का धर्म है, व्यवहार में इन तीनों का सम्मेलन सा हो रहा है यद्यपि तीनों भिन्न हैं तथापि अभेद है। इन तीनों में संयमता से रुत

प्राणियों के शब्द का ज्ञान कि वह किस अभिप्राय से बोला गया है योगी उसी का साक्षात्कार करता है।

सं०—संयम से सिद्ध होने वाली विभूतियां यह है।

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥१८॥

प० क्र०—(संस्कार, साक्षात्करणात्) संस्कारों के प्रत्यक्ष करने से (पूर्व जाति ज्ञानम्) पूर्व जन्म का ज्ञान होता है।

भा०—वासना रूप स्मृति, और क्लेश हेतु जो (अविद्यादि) दोष तथा जाति, आयु और भोग हेतुक धर्माधर्म रूप कारण यह दो प्रकार के संस्कार हैं। यह छुपे हुए नाना रूप उभय संस्कार पिछले जन्म संस्करण योगी के चित्त पर जो प्रभाव डालते हैं उसमें संयम करने से और उनका साक्षात्कार होने पर योगी को जो पूर्व जन्म अथवा अनेक पूर्व जन्मों का ज्ञान होता है उससे जिस देश, जिस काल, अथवा जिस निमित्त से वह संस्कार पड़े थे उनका ज्ञान हो जाता है यही पूर्व जन्म ज्ञान है।

सं०—अन्योचित्त से दूसरे के चित्त का ज्ञान कैसे होता है।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥१९॥

प० क्र०—(प्रत्ययस्य) चित्त के (परि, चित, ज्ञानम्) दूसरे के चित्त का ज्ञान (होता है)।

---

*अपने संस्कारों के साक्षात से अपने और दूसरों के संस्कारों के साक्षात से दूसरे जन्म का ज्ञान होता है [व्यास, वाच स्पति भास्य]

भा० —मनुष्य का मुख उसके स्वभाव का चित्र है उसमें संयम करने से अथवा (लक्षण धारणा) संयम से जो साक्षात् कार होता है उससे परिचित्त भाव प्रत्यक्ष होता है यह परिचित्त भाव प्रत्यक्ष बतलाता है कि वह वीतराग है संसारी वृत्ति वाला यह बचन व्यवहार और चित्तवृत्ति में (वृत्ति के झुकाव) के सयम करने पर प्राप्त होता है (इससे समस्त चित्त वशीकार होता है) ।

सं०—क्या यह चित्त अपने.. विषय सहित साक्षातकार में आता है ।

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥२०॥

प० क्र०—(न, च,) परन्तु नहीं (तत्) वह (चित्त) (सा, ऽऽ ल म्बनम्) विषय युक्त (तस्य) उसके (अवि-षयी, भूतत्वात् विषय न होने से) ।

भा०—संयम द्वारा उसी का साक्षात्कार होता है जो उसका विषय होगा । संयम का विषय वही होगा कि जो शब्द अथवा अनुमान से किसी प्रकार जाना गया हो अतः बाह्य चिन्ह आदि से दूसरे के चित्त को इतना मात्र जान सकना है कि वह रागी है अथवा विराग वाला । अब किस विषय में इसका राग है शब्द में या रूप में किस शब्द में या रूप में यद्यपि यह किसी चिह्न से नहीं जाना जाता और जो जाना नहीं उसमें संयम नहीं हो सकता इसलिये चित्त में धर्म राग द्वेष आदि साक्षात-

कार होते हैं उसका विषय नहीं तप चित्त का विपय क्या हैं ? इस प्रकार संयम करता है तो उस ज्ञान हा जाता है ।

सं०—शीरर-रूप में संयम से क्या लाभ है ।

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ।२१॥

प० क्र०-(काय रूप संयमात्) शरीर के भाव में संयम करने से (तद्, ग्राह्य, शक्ति, स्तम्भे) ग्राह्य शक्ति स्तम्भन (चक्षुः प्रकाशा, ऽसम्प्रयोगे) नेत्र के प्रकाश का सम्बन्ध न होने से (अन्तर्द्धानम्) छिपना ।

भा०----शरीर पांच भूतों से बना है वह रूप वाला होने से नेत्रों से ग्राह्य (देखा) जाता है उस रूप में संयम से रूप ग्राह्य शक्ति जिस रूप वाले शरीर का प्रत्यक्ष होता ह उसे देखने को शक्ति थम जाती है तब योगी का शरीर अन्य के नेत्र प्रकाश का विषय नहीं होता तब सामने खड़ा भी उसे कोई नहीं देख सकता[१] अतः जब वह अपने शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध में संयम करता है उनकी ग्राह्य शक्ति को थाम लेता है तब उसके पास खड़े उसके शब्द को नहीं सुन सकते उसे स्पर्श नहीं कर सकते ।[२]

१जादुगा, अंजन, और रसायन इसी के भेदानुगत है ।

२चींटियों आदि के किसी ने शब्द नहीं सुने । यह समस्त योगि को प्राप्त विभूतियां स्वभावतः किसी न किसी योनि में पेक २ रूप से विद्यमान है ।

सं०—कर्म क्या है।

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥२२॥

प० क०—(सोप क्रमं) आरंभयुक्त (निरूप क्रमं) आरंभहीन (च) और (कर्म) कर्म-क्रिया (तत्, संयमात्) उसके संयम से (ऊपरान्त, ज्ञानं) मृत्यु ज्ञान (अरिष्टेभ्यः) विपरीत चिह्नों से (वा) अथवा

भा०—सोप क्रम और निरूप क्रम दो प्रकार के कर्म होते हैं उसमें संयम से मृत्यु ज्ञान हो जाता है। अथवा विपरीत चिह्नों से मृत्यु का ज्ञान होता है इसमें योगी को यह जानना होता है कि जिन कर्म फलों से आयु मिली है और उसमें जिन कर्मों का फल मिल चुका है और थोड़ा शेष है वह सोप क्रम कर्म और जिनका कार्य अधिक फल देना है वह निरूप क्रम कर्म कहलाता है इसमें संयम से आयु शेश का ज्ञान होता है। शारीरिक प्रत्यूहों (अरिष्टों) के ज्ञान से भी मृत्यु ज्ञान कर लेता है। इसके लक्षण यह हैं कि जब हाथों से कानों को ढँके और भीतर से शब्द न सुनाई दे। हाथों को आँखें ढाकने पर भीतर ज्जोति कण न दिखाई दें यह आध्यात्मिक अरिष्ट हैं। अपने सम्मुख मृतमूर्ति को देखे तो आधिभौतिक अरिष्ट समझे। सहसा सिद्ध दर्शन होना आदि दैविक अरिष्ट हैं इस से मृत्यु निकट जाने। देश

काल भी पता लगता है कि जो केवल योगियों को प्रत्यक्ष होता है।

सं०—मैत्री संयम क्यों है।

मैत्र्यादिषु बलानि ॥२३।

प० क्र०-(मैत्र्या,ऽऽदिषु) मैत्री आदि में (बलानि) बल से।

भा०—मैत्री, करुणा और मुदिता में साक्षात्कार पर्यन्त संयम से योगी का मैत्री बल, करुणा और मुदिता बल बढ़ जाता है इस प्रहर्ष-योग द्वारा योगी संसार का उपकार करता है। संसार को सुखमय बना सकता है।

सं०—बल में संयम का क्या अर्थ है।

बलेषु हस्तिबलादीनि ।।२४।।

प० क्र०-(बलेषु) बलों में (हस्ति बला ऽऽ दीनि) हाथी के बल आदि की प्राप्ति होती है।

भा०—जब योगी हाथी के बल में तन्मय हो कर साक्षात् कार-पर्यन्त संयम करता है तो उस में हाथी का बल आ जाता है अर्थात् जिस के बल में संयम करना चाहे उस बल को ही साक्षात्कार कर लेता है।

सं०—योगी दूर की वस्तुओं को कैसे देख लेता है ?

प्रवृत्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् २५

प० क्र०-(प्रवृत्या, ऽऽलोक, न्यासात्) प्रवृत्ति प्रकाश से (सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट, ज्ञानम्) छोटी स्थिति वाली और

दूर होने वाली वस्तु का ज्ञान होता है।

भा०—इस मन की प्रवृत्ति का नाम ज्योतिष्मती है उस प्रवृत्ति में जब योगी संयम करता है तो अदृश्य परमाणु भी उसे प्रत्यक्ष हो जाता है इसी प्रकार पृथ्वी के नीचे दबी हुई खाने आदि जो कुछ भी छुपा हुआ है उस पर संयम से उस प्रकाश को डालता है तो सब वस्तुओं को साक्षात्कार करता है आंख द्वारा देखने से जो रुकावटें होती है वह इस संयम से नहीं होती।

सं०—भुवनज्ञान किस संयम होता है।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥२६॥

प० क्र०—(भुवन ज्ञानं) भुवन ज्ञान (सूर्य) सूर्य में (संयमात्) संयम में (होता है)

भा०—सूर्य के प्रकाश में साक्षात्कार पर्यन्त संयम का करना योगी को समस्त मण्डलों का ज्ञान हस्तामलक करता है इससे पूर्व योगी को सात्विक प्रकाशालम्बन करना सिद्ध किया अब यहां भौतिक प्रकाशालम्बन अभिप्रेत होने विवरण किया है।

सं०—तारा व्यूह का ज्ञान किस प्रकार होता है।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥२७॥

प० क्र०—(चन्द्रे) चन्द्र में (तारा व्यूह ज्ञानम्) तारक समुदाय का ज्ञान होता है।

भा०—चन्द्रमा में संयम करने से तारागणों की गति का❀ ज्ञान होता है।

सं०—तारक गति का ज्ञान करण क्या है।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥२८॥

प० क्र०-(ध्रुवे) ध्रुव में (तद् गति ज्ञानम् उनतारागणों की गति का ज्ञान होता है।

भा०—ध्रुव तारे के संयम से प्रत्येक तारागण का ज्ञान योगी को होता हैं अर्थात् उसकी गति एक राशि से दूसरी राशि तक रहेगी साक्षात् होती है।

सं०—शरीर रचना का ज्ञान किस प्रकार होता है।

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥२९॥

प० क्र०-(नाभि, चक्रे) नाभि के चक्र में (काय व्यूह ज्ञानम्) शरीर व्यूह का ज्ञान होता है।

भा०—नाभि चक्र में संयम से त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) ज्ञान आदि रुधिर धातु स्थिति को साक्षात् करता है।

सं०—कण्ठ कूप संयम का क्या फल है।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥३०॥

प० क्र०-(कण्ठ कूपे) कण्ठ गर्त्त में संयम करने से योगी की क्षुत्पिपासा निवृत्तिः) भूख प्यास से निवृत्ति होती है।

❀सूर्य और चन्द्र नाड़ियां भी है। जिन्हें इड़ा और पिंगला भी कहते है।

भा०—इस कण्ठ कूप मे प्राणों का सम्बन्ध है इसी कारण योगी को भूख प्यास सताती है उस कण्ठ-कूप-संयम-योग से भूख, प्यास बाधा नहीं करतीं।

सं०—स्थिरता कहाँ होती है ?

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥३१॥

प० क्र०—(कूर्मनाड्याम्) कूर्म नाड़ी में संयम से (स्थैर्यम्) स्थिरता (होती है)

भा०—कण्ठ कूप से नीचे छाती में कच्छपाकार नाड़ी है उसमें संयम से स्थिरता लाभ होती है। इस से शरीर को कठिन से कठिन अकड़ाना चाहे कि जिसमें कोई हिला डुला सके तो योगी को ऐसा करने का अधिकार होता है।

सं०—मूर्द्धा में क्या भान होता है ?

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥३२॥

प० क्र० (मूर्द्ध ज्योति में संयम द्वारा (सिद्ध दर्शनम्) सिद्धों का दर्शन लाभ होता है।

भा०—ब्रह्मरन्ध्र में जो मस्तक में वह छेद है कि जो गर्भावस्था में सिर बनते समय मर्मस्थान रहता है उसके भीतर चमकने वाली ज्योति मूर्द्धा ज्योति कहलाती है। योगी उसमें संयम से सिद्धों के दर्शन लाभ करता है।❀

× द्यु और पृथिवी के मध्य में घूमने वाले सिद्ध हैं यह दिव्य पुरुष दूसरे प्राणियों के अदृश्य परन्तु योगी को दृश्य होते हैं (व्यास भाष्य तथा भोज वृत्ति)

सं०—प्रातिभ ज्ञान क्या है ?

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥३३॥

प० क्र० (प्रतिभाद वा) अथवा प्रतिभा (ज्ञान) से सर्वम् सब कुछ (जानता है)

भा०—योगी के विवेक ज्ञान उदय होने से चित्त का प्रातिभ स्फुरना) ज्ञान निर्मल हो जाता है उस भ्रान्ति रहित ज्ञान से योगी सब जानने की शक्ति वाला होता है।

सं०—क्या हृदय में भी संयम किया जाता है ?

हृदये चित्तसंवित् ॥३४॥

प० क्र०–(हृदये) हृदय में संयम से (चित्त संवित) चित्त का ज्ञान होता है।

भा०—चित्त का निवासस्थान हृदय है उसमें संयम करने से वृत्ति सहित चित्त का साक्षात् होता है। हृदय में बन्धन वासना पर विजय प्राप्त होने के अनन्तर अब हृदयस्थ पुरुष का ज्ञान योगी को शेष रहता है।

सं०—पुरुष का ज्ञान किस प्रकार होता है ?

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसँयमात्पुरुषज्ञानम ॥३५॥

प० क्र०–(सत्व, पुरुषयोः) बुद्धि तथा पुरुष (अत्यन्ताः संकीर्णयोः) जो परस्पर अत्यन्त भिन्न है उनको (प्रत्यया ऽ विशेषः)

प्रतीतियों की एकता (भोगः) भोग (है) उनमें (से) (परार्थ ऽन्य स्वार्थ-संयमात्) परार्थ प्रतीति भिन्न जो स्वार्थ (प्रतीति) है उसमें संयम करने से (पुरुष, ज्ञानम्) पुरुष का ज्ञान होता है।

भा०—बुद्धि तथा पुरुष दोनों परस्पर विलक्षण हैं इस पुरुष को बुद्धि जैसा भासित कराती है वैसा ही पुरुष को भासित होता है बुद्धि के शान्त होने से पुरुष शन्त, घोर होने से घोर मूढ़ होने से मूढ़-भासित होता है यह सब परिवर्तन वाह्य जगत के दृश्य कि जिनसे बुद्धि रूपान्तर को प्राप्त होती है के कारण हुआ करता है अतः बुद्धि-वृत्ति के अनुकूल पुरुष वोध माना गया है वुद्धि वृत्ति और पुरुष वृत्ति में कोई भेद नहीं होना यही भोग है इसमें वुद्धि प्रतीत अथवा भृत्ति परार्थ पुरुष के लिये है और, बुद्धि ने जो वाह्य जगत से दृश्य पुरुष के सम्मुख रक्खे हैं और जो पुरुष में उसकी प्रतीत है वह पौर षेय वोध किसी अन्य के लिये नहीं होता। अपने लिये होता है।

सं०—स्वार्थ में भी क्या संयम होता है

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शा-स्वादवार्ता जायन्ते ॥३६॥

प० क्र०-(ततः) स्वार्थ संयम से प्रातिभ श्रावण वेदना ऽऽदर्शा ऽऽस्वाद, वार्ताः) प्रतिभा से श्रवण से अनुभव से आदर्श, आस्वाद और गन्ध ज्ञान से उत्पन्न होते हैं।

भा०—स्वार्थ संयम का फल पुरुष का ज्ञान है यह ज्ञान उसे षट् सिद्धियों के ज्ञान पूर्वक होता है उसके पश्चात् सिद्धि होती है। जिस समय स्वार्थ संयम होता है योगी का मन की सूक्ष्मता, वैधानिक और कठिन (अलौकिक) वस्तुओं के ज्ञान का सामर्थ्य होता है। श्रोत्रेंद्रिय से दिव्य शब्द श्रवण का सामर्थ्य होता है। त्वकेन्द्रिय द्वारा दिव्य स्पर्श ज्ञान का सामर्थ्य होता है। नेत्र द्वारा दिव्य रूप देखने का सामर्थ्य हो जाता है। नासिका से दिव्य गन्ध सूंघने की शक्ति होती है। अब योगी मन सहित इन्द्रियों के सामर्थ्ययुक्त जिन शूक्ष्म विषयों को जानना चाहता है जान लेता है।

सं०—अब पौरुषेय बोध के अनन्तर योगी को तुष्टि न हो जावे अतः पुनः पुनः प्रयत्न करते रहने को कहा है।

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने शिद्धयः ॥३७

प० क्र०—(ते) प्रातिभ ज्ञान (समाधौ) समाधि में (उप सर्गाः) प्रत्यूह (बाधायें) (हैं) व्युत्थाने (व्युत्थान) उत्थान में (सिद्धयः) सिद्धियां (हैं)

भा०—जब इन्द्रियों में दिव्य शक्तियां उत्पन्न होंगी तो उनसे कहीं योगी हर्ष और आश्चर्यवश सन्तोष मान कर "कृत-कृत्य हो गया" ऐसा न मानले कि यह तुच्छ सिद्धियां व्युत्थित चित्त की सिद्धियां हैं परन्तु समाहित चित्त के लिये तो विघ्न ही हैं। क्योंकि इसमें बिहार

करने वाला पुरुष पुरुष ज्ञान अर्थात् परम सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता।

सं०—ज्ञानरूपी विभूतियों का फल पुरुष दर्शन पर्यन्त ही है वह बतलाया गया अब कर्मरूपी ऐश्वर्य जो संयम फल है उसे कहते हैं।

बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च-चित्तस्य परशरीरावेशः ३८

प० क्र०—(बन्ध, कारण, शैथिल्यात्) बन्ध हेतुकी शिथिलता से (प्रचार, संवेदनात्, च) गमन मार्गों के ज्ञान से (चित्तस्य) चित्त का (पर शरीरा ऽऽवेशः) पर शरीर में आवेश (होता है)

भा०—पूर्व कर्मानुसार कि जिसके कारण मन चंचल होता हुआ भी एक शरीर में बँधा रहता है उसे कर्म संयम द्वारा योगी को ढीला करना पड़ता है। वह मन उन नाड़ियों में कि जहां उसके घूमने की क्रिया होती है उसमें संयम करके उसको प्रत्यक्ष करता है और अपने से चित्त को निकाल कर पर शरीर में डालता है यही परकाय प्रवेश क्रिया कहलाती है वहां बन्ध के कारण जो कर्म हैं उनके शिथिल होने पर अवरोध (रुकावटें) हट जाती हैं और उन नाड़ियों का ज्ञान होने वह निर्विघ्न एक शरीर से निकल कर दूसरे में चला जाता

है और चित्त के अनुकूल इन्द्रियां भी उस पर शरीर में आवेश (प्रवेश) कर लेती हैं ।

सं०—उर्ध्व गति कैसे होती है ।

उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्व-सङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥३९॥

प० क्र०—(उदान, जयात्) उदान वायु को जीतने से (जल पङ्क, कण्टका, ऽऽदिषु) पानी, कीच, और कांटे आदि में (असंगः) साझा न रखने से (उत्क्रान्तिः च) उर्ध्वगति होती है ।

भा०—मनुष्य शरीर में पांच प्राण हैं यह स्थान भेद से प्राण, समान, उदान, ब्यान और अपान कहे जाते हैं यद्यपि मुख्य प्राण एक ही है कि जिस मे सांस लेते हैं यह नाक से हृदय तक है। यह सांस-वायु भीतर चार स्थानों में बँट जाती है। यह नाक से हृदम तक है यह सांस–वायु भीतर चार स्थानों में बँट जाती है अपान वायु मूल पुरीष और गर्भ को नोचे खिसकाता है और नाभि से लेकर पाव तक रहती है समान वायु अहार रस को यथा स्थान पहुंचाती है। यह हृदय से नाभि तक रहती है । उदान वायु ऊपर उठने का कारण है और सब शरीर में व्यापक है। इसी उदान में संयम करने से योगी की ऊर्ध्व गति होती है तो न वह पानी

में डूबता न कींच, काटों में फँसता है किन्तु तूल बल हलका हो जाता है और मरने के समय शुक्ल गति अधिमार्ग से उत्तर मार्ग गति को प्राप्त होता है।

सं०—क्या इस उदान के समान अन्य वायु भी जीती जाती हैं

समानजयाज्ज्वलनम् ॥४०॥

प० क्र०—(समान, जयात्) समान जीतने से (ज्वलनम्) जलना नहीं होता।

भा०—शरीराग्नि समान के अधिकार में हैं इस समान में संयम से योगी उत्तेजित हो कर उसका शरीर अग्निवत् प्रदीप्त होता है और उसे वाह्य अग्नि नहीं जला सकती।

सं०—दिव्य श्रोत्र कैसे प्राप्त होते हैं।

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध-संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥४१॥

प० क्र०-(श्रोत्रा ऽऽ काशयोः) श्रोत्र और आकाश (सम्बन्ध संयमात्) के योग सम्बन्ध संयम करने से। दिव्यम् दिव्य (श्रोत्रम्) कान (होते हैं)

भा०—समस्त शब्द कान से सुने जाते हैं यह साधन (कान) आकाश के आश्रय होता है। सुना भी आकाश्रित है इन दोनों के सम्बन्ध (आधाराधये भाव योगेन)

साधन और साध्य में संयम करने से दिव्य श्रोत्र मिलता है जिस से सूक्ष्म, व्यवहित (विशीर्ण विभक्त) विप्रकृष्ट (दूर के) शब्द सुन सकता है। इसी भाँति उत्तरोत्तर त्वचा, वायु, आंख, तेज रसना जल घ्राण और पृथिवी के सम्बन्ध संयम से दिव्य त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण मिलते हैं यह संयम साध्य है जिन्हें योगी सिद्ध करते हैं।

सं०—क्या आकाश में भी उड़ सकता है।

कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघु-तूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥४२॥

प० क०-(काया, ऽऽकाशयोः) शरीर और आकाश के (संबन्ध संयमात्) सम्बन्ध में संयम से (लघु, तूल समापत्तेः च) रुई की नाईं हलका (सूक्ष्म) समापत्ति से (आकाश, गमनम्) आकाश में जा सकता है!

भा०—शरीर में रन्ध्र जाल हैं इनमें आकाश है अर्थात् इस शरीर को अवकाश देने वाला आकाश है उस आकाश से जो शरीर सम्बन्ध है (प्राप्ति योग) उसमें संयम करने से रुई भांति उड़ने वाली वस्तुओं में तन्मयता होने से अति लाघवतावश योगी आकाश में गमन कर सकता है।

सं०—महा विदेहा अथवा आवरण क्षय क्या वस्तु है।

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥४३।

प० क्र०—(बहिः) बाहर (अ, कल्पिता) कल्पना रहित (वृत्तिः) वृत्ति रुझान या झुकाव (महा विदेहा) माह विदेहा कहलाती है (ततः) उस से (प्रकाशा ऽऽवरण, क्षयः) प्रकाश के ढकने का नाश होता है ।

भा०—मन की विदेहा धारणा में मन को शरीर से बाहर स्थापन करना होता है जब योगी ऐसा करता है तो प्रथम वह निर्मूल कल्पना करनी होती है फिर वह कल्पना रहित यथार्थ हो जाती है यतः मन शरीरके भीतर ठहरा हुआ है ही वही वृत्ति मात्र से बाहर के विषयों में धारण कर लेने से ही विदेहा धारणा बन जाती है। इस धारणा के वल से यथार्थ ही जब मन की बाहर की वृत्तियां होती हैं इसे अकल्पिता विदेहा किम्बा महा विदेहा कहते हैं। इस में योगी कल्पिता के द्वारा अकल्पिता की साधना करता है इस धारणा से रजस तमस के मूल क्लेश और कर्म विपाक क्षीण हो जाते हैं और चित्त-प्रकाश की उपर्युक्त रुकावटें नहीं रहतीं तब योगी का बिना रोक टोक हुआ चित्त यथेच्छ विहार करता है और जानने लगता है।

सं०—ग्राह्य-विषय संयम की सिद्धियां कौन २ हैं।

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्व संयमाद्भूतजयः ४४

प० क०—(स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्मा, ऽन्वया, ऽर्थ वत्व संयमात) स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, और अर्थ वाले में संयम करने से (भूत, जयः) भूतों का जप (होता है)

भा०—यह भूत पांच रूपों में बंटे हुये हैं अर्थात् स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म अन्वय, और अर्थ वत्व। स्थूल रूप में पृथिवी जल, तेज वायु आकाश जो हमें प्रत्यक्ष है, है। इन के स्वरूप में गन्ध, स्नेह, उष्णता, कंपन और अवकाश देना अपने २ नियत धर्म जिन पंच भूत जाने जाते हैं। तीसरा सूक्ष्म रूप–गन्ध तन्मात्र रसतन्मात्र रूपतन्मात्र स्पर्श तन्मात्र और शब्द तन्मात्र जो इन स्थूल भूतों के कारण हैं कहलाते हैं। अन्वय रूप में सत्व, रजस तमस यह तीनों गुण जो अपने प्रकाश प्रवृत्ति और स्थिति धर्मों से सर्वथा मिश्रित अनुभूत होते हैं। पांचवां अर्थ वत्व रूप है जो पुरुष के भोग और अपवर्ग के प्रयोजन सिद्ध में लगा हुआ है यह वह है कि जिसमें गुणों के भोग और अपवर्ग सिद्धि की शक्ति है। इन्हीं के संयम द्वारा पाञ्च भौत वशीकार होता है।

सं०—आठ सिद्धियां कैसे मिलती हैं।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः काय-संपत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥४५॥

प० क्र०—(ततः) उस भूत जय द्वारा (अणिमादि प्रादुर्भावः) अणिमादि का होना (काय, सम्पत) शरीर सम्पदा (तत् धर्मा, ऽभभि घातः च) और उसके धर्मों के कारण निरोध नहीं होता।

भा०—अणिमा सिद्धि में योगी सूक्ष्म होने की, लघिमा में हलके होने की महिमा में बड़े होने की, प्राप्ति में पहुँचने की प्रकश में मनोभिलाषा का अनवरोध, वशित्व में वशीकरण, ईशित्व में सत्ताधारी होना वशित्य में सत्य संकल्प शक्ति आ जाती है। यह पहिले कही भूत जप के कारण होती हैं और शरीर सम्पदा भी मिलती है।

सं०—शरीर सम्पदा क्या वस्तु है।

रूपलावण्यबलवज्रसंहनन-त्वानि कायसम्पत् ॥४६॥

प० क्र०—(रूप, लावण्य, वल वज्र संहननत्वानि) स्वरूपवान, लुनाई, वल, और हीरे के समान रचना (शुद्धनिर्मल) (काय सम्वत्) शरीर की सम्पदा है।

भा०—भूतों के जप से आठ सिद्धियां मिलने पर उस योगी का रूप परम दर्शनीय समस्त शरीर कान्ति लावण्य मय

हो जाता है। महानवल और शरीर की बनावट शुद्ध हीरे के समान दृढ़ निर्मल हो जाती है यही चारों शरीर ऐश्वर्य शरीर सम्पदा कहलाती है।

सं०—ग्रहण संयम में कोन सी सिद्धियां हैं।

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्व संयमादिन्द्रियजयः ॥४७॥

प० क्र०—(ग्रहण, स्वरूप, ऽस्मिता, ऽन्वयार्थ वत्त्व संयमात) ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और प्रयोजन वत्ता में संयम से (इन्द्रिय जयः) इन्द्रिय जय (होना है)

भा०—रूपादि विषयों का नेत्र से जानना ग्रहण इसमें नेत्र पन का जो सामान्य रूप है वह स्वरूप उसका कारण सात्विक अहंकार वह अस्मिता इनमें तीनों गुणों का लगाव अन्वय इसमें भोग और अपवर्ग (मोक्ष) के लिये होना प्रयोजन पन है। इन इन्द्रियों के इन पांचों रूपों में साक्षात्कार तक संयम होने से इन्द्रियां वश में होती हैं।

सं—इन्द्रिय जय करने से लाभ।

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥४८॥

प० क्र०—(ततः) उस इन्द्रिय जय से (मनोजवित्वम्) स्व विषय ग्रहण शक्ति वेग, (विकरण भावः) बिना

शरीर के इन्द्रियों में क्रिया शक्ति, (प्रधान जयः च) प्रकृति विकार पर अपना अधिकार होना।

भा०—योगी का मन वेग की भांति प्रत्येक अपने २ विषयों की शक्ति पर अधिकार होना, बिना शरीर साधन के इन्द्रियों में क्रिया शक्ति आना, प्रकृति और विकार पर वशीकरण, यह तीनों मधुप्रतीका नामक सिद्धियां प्राप्त होती है।

सं०—गृहीत संयम किसे कहते हैं।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥४९॥

प० क०—(सत्व पुरुषा न्यता ख्याति, मात्रस्य) वुद्धि और पुरुष के भेद ज्ञानी को (सर्व, भावा ऽधिष्ठातृत्वम्) समस्त भावों का स्वामित्व (सर्व, ज्ञातृत्वम्) सर्व ज्ञात होना (लाभ है।)

भा०—वुद्धि और वुरुष के भेद को जान लेने से योगी वाहर और भीतर समस्त भावों का अधिकारी हो जाता है तब उस को काम, क्रोध, आदि भाव और वाह्य सोन्दर्यादि उसे डावांडोल नहीं कर सकते किन्तु योगी उन्हें स्वयं-स्व वृत्ति से संचालित करता है और लोकान्तरगत समस्त पदार्थ-तत्व का पूर्ण ज्ञाता हो जाता है। इन दोनों सिद्धियों को विशोका कहते हैं।

सं०— विवेक ख्याति का मुख्य फल क्या है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥५०॥

प० क्र०–(तद, वैराग्यात्) उसके वैराग्य से (अपि–भी) दोष बीज, क्षये) दोषों का बीज नाश होने पर (कैवल्यम्) कैवल्य) (होता है।)

भा०—बुद्धि और पुरुष भिन्न२ हैं यह विवेक भी बुद्धि का ही धर्म और बुद्धि का फल है परन्तु पुरुष का निजस्वरूप नहीं इस लिये अपने स्वरूप में ठहरने के लिये इस विवेक ख्याति द्वारा वैराग्य वृत्ति उत्पन्न होती और इस वैराग्योदय से अविद्यादि क्लेशों के बीज अर्थात् अविद्या आलेपन संस्कार जल कर चित्त के साथ विलीन हो जाते है उनके नाश होने पर आत्मा के सामने अब बाहर का कोई दृश्य नहीं रहा और पुरुष गुणों से भी पृथक हो गया इसी दशा का नाम कैवल्य है।

सं०—योगी को चेतावनी चिह्न का उपदेश।

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥५१॥

प० क्र०–(स्थान्युप निमंत्रणे) स्थानाधीशों के सत्कार से (सङ्ग, स्मया ऽकरणम्) सम्बन्ध और ममत्व न करना (पुनः) फिर (अनिष्ट प्रसङ्गात्) अनिष्ट प्रसङ्ग से।

भा०—कैवल्य योग का परम पद है वहां तक पहुंचने में जो बीच की भूमियां हैं वह बड़ी मनोहर और रमण शील होती हैं उनमें योगी चकित होकर न विहार करने लगजावे और जिन इन्द्रियों पर विजय किया है उन्हींके वशवर्ति हो कर इन दिव्य विषयों से सम्बन्ध न डाल ले। इस दिव्य प्रलोभन से पुरुष को प्राप्त होने में रुकावटें होतो सम्भव हैं अतः उनमें न फँस जाना चाहिये यह चेतावनी है। क्योंकि योगियों की चार दशायें हैं काल्पनिक, मधु भूमिक, प्रज्ञा ज्योति और अति क्रान्ति भावनीय। इन में पहिला नये २ योगाराधन का सवितर्क समाधि वाला होता है। दूसरा मधुमत्ती भूमि द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा को पाकर भूत और इन्द्रियों को जीतने के लिये निर्वितर्क समाधि का साधन करता है तीसरा भूत और इन्द्रियों को जीतने पर स्वार्थ संयम योग से विशोका और संस्कार शेषा इन दो भूमियां को सिद्ध करना चाहता है चोथा मधुमती मधु प्रतीका और विशोका इन तीनों भूमियों में विरक्त हो सब कुछ साधन कर लिया है केवल चित्त लय शेष रहा है और सात प्रकार की प्रान्त भूमि प्रज्ञा वाला है इन में साधक योगी को बीच के समान पति आवाहन नहीं करते इसी प्रकार तीसरे और चौथे को भो नहीं बुलाते। दूसरा जो ऋतम्भरा प्रज्ञा वाला है उसे ही प्रलोभन दिया जाता है अतः इस प्रलोभन से बचने पर ऊंचा योग हो सकता है

सं० इस संयम के और भिन्न उपाय यह हैं।

क्षणतत्क्रमयोः संयमादविवेकजं ज्ञानम् ॥५२॥

प० क्र०—(क्षण, तत्, क्रमयोः) क्षण और से क्रम में (संयमात्) संयम करने से (विवेकजं, ज्ञानं) विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है।

भा०—काल का सब से न्यून भाग क्षण कहलाता है उससे और कोई छोटा भाग नहीं होता इसी के आगे पीछे के तारतम्य को क्रम कहते हैं इन दोनों में संयम करने से विवेकज ज्ञान होता है अर्थात् यह काल क्षण पूर्व काल क्षण से पीछे का है परन्तु दूसरे से पूर्व का है इस क्रम में जब संयम किया जाता है तो अत्यन्त सूक्ष्म क्षणों के क्रम साक्षात्कार होता है उस सूक्ष्म क्षण तारतम्य का निश्चय होता है तब योगी को प्रत्येक सूक्ष्म वस्तु के भिन्न २ साक्षात्कार—सामर्थ्य सिद्धि होती है।

सं०—इसका उदाहरण दिया जाता है।

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥५३॥

प० क्र०—(जाति, लक्षण देशैः) जाति, लक्षण और देश से (अन्यता, ऽनवच्छेदात्) भेद के अनिश्चय से तुल्ययोः दो सदृश्यों के (ततः) विवेक जन्म ज्ञान से (प्रतिपत्तिः) निश्चय (होता है)

भा०—जाति, लक्षण और देश भेद से पदार्थों में भेद होता है। जैसे एक ही रंग के दो भिन्न जाति के पशु हों तो वहां जाति भेद से और यदि एक ही रंग और जाति के दो पशु हों तो लक्षण भेद से इसी प्रकार एक ही रंग के दो पशु स्थान भेद से बँधे हों देश भेद से जाने जाते हैं परन्तु जहां यह तीनों प्रकार के भेद न हों वहां भेद प्रतीति इस विवेकज ज्ञान संयम से ही होती है।

सं०—विवेकज - ज्ञान - फल के लक्षण को कहते हैं।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥५४॥

प० क्र०—(तारकं) संसार सन्तारक (सर्व विषय) सब का विषय कर्त्ता (सर्वथा, विषयं) सब प्रकार से विषय कर्त्ता, (अक्रमं) क्रम रहित एक के साथ (विवेकजं, ज्ञानम्) विवेकज ज्ञान है।

भा० - बिना उपदेश के स्वप्रतिभा योग से विवेकज ज्ञान होता है सब वस्तुओं को सब अवस्थाओं में एक साथ सब का ज्ञान हाथ पर बदरी फल (बेर) की भांति प्रत्यक्ष करता है। यह विवेकज ज्ञान पूर्ण ज्ञान कहलाता है संप्रज्ञात योग इसी का अंश है इस दशा में योगी को कोई वस्तु अविषय नहीं रहती।

सं०—बिना विवेक ज्ञान के क्या कैवल्य नहीं होता

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥५५॥

प० क०–(सत्व पुरुषयोः) बुद्धि और पुरुष की (शुद्धि, साम्ये) शुद्धि के समान होने पर कैवल्य होता है।

भा०—जब बुद्धि पर रजस और तमस रूपी मल नहीं रहता तो उस में पुरुष साक्षात्कार योग्यता आ जाती है इसी अवस्था में योगी को कैवल्य प्राप्त होती है यह कैवल्य पुरुष और बुद्धि के भेद प्रतीति का नाम है चाहे वह विभूति प्राप्ति के पीछे ही क्यों न हो और चाहे उससे पूर्व। कैवल्य के लिए बुद्धि और पुरुष का विवेक ज्ञान होना मुख्य है! इससे अविद्या दूर होती है उससे क्लेश और क्लेश क्षय से कर्म उससे जन्म का क्रम बन्द हो जाता है। इस अवस्था में पुरुष अपने शुद्ध स्वारूपकार निर्मल ज्योतिवान केवली होता है।

इति श्री पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित कृते योग दर्शने भाषा भाष्ये विभूति पादः समाप्तः।

❁ ओ३म् ❁

अथ कैवल्य पादारम्भः

सं०—कैवल्य का निर्णय चित्त और चित्ति के हाथ में है इसलिये कैवल्याप योगी चित्त का निर्णय पांच सिद्धियां द्वारा कहते हैं।

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥१।

प० क्र०—(जन्मौषधि, मन्त्र तपः समाधिजाः) जन्म औषधि मंत्र, तप तथा समाधि से उत्पन्न हुई (सिद्धयः) सिद्धियां हैं।

भा०—कुछ सिद्धियां ऐसी हैं कि जिसकी उत्पत्ति केवल जन्म मूलक ही हैं उन्हें जन्मजा सिद्धि कहा जिसमें सांसिद्धिक ज्ञान उत्पन्न होता है। पारे आदि रसायन-उपयोगी द्रव्यों के साधन से सिद्धि होना औषधिजा-सिद्धि वेदादि स्वाध्याय और इष्ट संयम से मन्त्रजा सिद्धि, अशुद्धि-क्षय द्वारा शरीर इन्द्रियों की शुद्धि जिसे तप द्वारा प्राप्त करते हैं उसे तपोजा सिद्धि तथा वह सिद्धियां जो विभूति सिद्धियां है जो समाधिजा कहलाती हैं प्राप्त होती हैं।

सं०—मंत्र द्वारा कैसे सिद्धि होती है

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात ॥२॥

प० क्र०—(जात्यन्तर, परिणामः) अन्य जाति में लौटना (प्रकृत्या, ऽऽपूरात) प्रकृतियों के भरने से।

भा०—शरीर और इन्द्रियों में विलक्षण शक्ति का होना प्रकृति (उपादान कारणों) के परिवर्त्तन से होता है। शरीर की प्रकृति पांच भौतिक है और अस्मिता इन्द्रियों की। अब ज्यों २ योगी के शरीर और इन्द्रियों के पूर्व अव-यव भिन्न हो हो कर उसके स्थान में दूसरे अवयव पूरित होते जाते हैं त्यों २ उसका शरीर विलक्षण बल वाला बनता है उसी प्रकार उस २ जाति के अनुकूल अवयव पूरित होने पर अन्य जाति परिवर्त्तन होता है और इस प्रकार परिवर्त्तन होना योगज धर्म कहलाता है यह मंत्र तप आदि से योगी सम्पादन करता है।

सं०—क्या यह प्रेरणा शरीर और इन्द्रिय के अवरोध को ही रोक ती है अथवा परिणाम ऐसे ही होने से होता है।

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥३॥

प० क्र०—(निमित्तं) निमित्त से (अप्रयोजकं) प्रेरणा करने वाला नहीं। (प्रकृतीनां) प्रकृतियों का (वर्ण भेदः) रुकावट का हटाना (तु) किन्तु (ततः) उससे (क्षेत्रिक वत्) खेती करने वाले के समान

भा०—निमित्त प्रकृतियों का प्रेरक धर्मादि नहीं वह तो उस के अवरोध-आवरण को किसान जैसे क्यारी से क्यारी तक जल मार्ग को वे रोक बह जाने के लिये काटता या

बन्द करता है उसी भांति यह रुकावट दूर करता है। भाव यह है कि धर्म के समान अधर्म भी प्रकृतियों की प्रवृत्ति में कारण है जब यह धर्म अधर्म की रोक को हटाता है तब शुद्ध परिणाम होने से अच्छा और अधर्म द्वारा जब धर्म प्रवृति को दबाता है तो परिणाम अशुद्ध (बुरा) होता है।

सं०—इन निर्माण चित्तों का कारण क्या है

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥४॥

प० क्र०—(निर्माण चित्तानि) बने चित्त (अस्मिता मात्रात्) अस्मिता मात्र से।

भा०—यह बने हुये चित्त अहंभाव से प्रतीत होते हैं इसीलिये भिन्न-भिन्न चित्तों के अभिप्राय भी भिन्न २ ही होते हैं परन्तु सब मिलकर एक ही कार्य करने वाले बन जाते हैं।

सं०—सब मिल कर एक ही कार्य करने के सम्बन्ध में करते हैं।

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥५॥

प० क्र०—(प्रवृत्ति भेदे) झुकाव या रुझान के भेद से (प्रयोजकं) प्रेरक नहीं (चित्तं) चित्त (एकं) एक (अनेकेषाम् बहुतों का।

भा०—शरीर मन, हाथ पांव नेत्रादि इन्द्रियां जिस प्रकार चित्त द्वारा प्रेरित होती है और उसी के आधीन काम करती हैं अथवा चित्त उनका अधिष्ठाता है और

यही चित्त पूर्व चित्त है जो उसे स्वभाव से प्राप्त था शेष तो रचना में आये हुये थे न कि स्वभाव सिद्ध थे ।

सं०—अब मोक्ष हेतुक चित्त को कहते हैं ।

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥६॥

प० क्र०-(तत्र) उनमें (ध्यान, जं) ध्यान से उत्पन्न चित्त (अनाशयं) वासना रहित होता है ।

भा०—निर्माण चित्त पांच प्रकार के हैं उसमें ध्यान से उत्पन्न चित्त वह क्लेश कर्म वासना हीन होता है और यही शुद्ध चित्त मुक्ति का अधिकारी है शेष क्लेशादि कर्म वासना युक्त होने से ठीक नहीं ।

सं—योगी अयोगी दोनो ही कर्म करते है फिर योगी के चित्त पर कर्म वासना का न होना क्यकिया कारण है ।

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥७॥

प० क्र०—(कर्म) कार्य (अशुक्ला, कृष्णां) न शुक्ल (शुक्ल) अशुक्ल (अशुद्ध) (योगिनः) योगी का (त्रिविध) तीन प्रकार का (इतरेषा) दूसरों का ।

भा०—योगी जो कर्म करता है वह न शुक्ल न कृष्णा किसी प्रकार का नहीं होता क्योंकि वह वासना रहित कर्म को ईश्वरार्पण करते हैं दूसरे (अयोगियों) के कर्म तीन प्रकार, अर्थात् कृष्णा जो कुत्सित वासना युक्त होता है शुक्ल जो तप स्वाध्याय पुण्य कर्म युक्त एवं शुक्लकृष्ण

मिश्रित कर्म कहलाता है होते हैं और वह वासना युक्त दूषित होते हैं।

सं०—अयोगी वासना युक्त यदि होते हैं जो जन्मान्तर प्राप्त होने पर उनमें सब पिछली वासनायें एक बार ही क्यों नहीं प्रकट होतीं। वह चाहे पिछली किसी योनि के वासना संस्कार क्यों न हों।

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभि व्यक्तिर्वासनानाम् ॥८॥

प० क्र०—(ततः) उस कर्म से (तद्विपाकाऽनुगुणानां, एव) उस के फलानुकूल ही (अभिव्यक्तिः) प्रकट (वासनां) वासनाओं की।

भा०—कर्मोदय जब होता है तो जैसा कर्म आरम्भ किया जाता है उसी के अनुसार वासनायें होती हैं जो प्रतिकूल होती हैं वह अप्रकट रहती हैं। यह मनुष्य जन्म कर्मों का फल है तो उसमें वासनायें भी वैसी ही हैं जो मानुष जन्म की है अतः मनुष्य का मनुष्य से भोग है और उसी अनुसार चेष्टायें होती हैं यद्यपि इससे पूर्व उसके और भी जन्म हुए होंगे परन्तु वासनायें दबी हुई हैं परन्तु वह तब तक न प्रकट होंगी जब तक वह गिर कर नीचे योनि में न पहुंचेगा।

सं०—मनुष्य योनि से यदि पशु-योनि में जीव जावे तो यह कैसे

सम्भव है कि निकट वासनाओं का तो स्मरण न रहे और दूर की वासना की स्मृति रहे।

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥९॥

प० क्र०—(जाति देश, काल, व्यवहितानां) जाति देश और काल से मिश्रित वासनायें (अपि) भी (आनन्तर्य) अमिश्रित है (स्मृति सस्कारयोः) स्मृति और संस्कार के (एक रूपत्वात्) समान विषय वाले होने से।

भा०—वासना प्रकट होने में कर्म अभिश्रण कारण नहीं होता किन्तु उनका कारण अपना अपना प्रकट करने वाला होता है जिसका प्रकट करने वाला मिल जाता है तो चाहे संस्कार दूर के हों या पास के स्मृति उत्पन्न करते हैं। संस्कार चित्त में रहा ही करते हैं। उसका व्यक्त करने वाला कारण मिला नहीं कि स्मृति उठ आती है इसी प्रकार जन्मान्तर भावनाओं की भी दशा है अर्थात् जैसे संस्कार वैसी स्मृति होती है।

सं०—प्रथम जन्म में तो संस्कार वासनायें नहीं होतीं तब फिर समस्त जीव किस प्रकार जाति योग्य भोग्य में चेष्टाओं में पाये जाते हैं।

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥१०॥

प०—(तासां) वासनाओं को (अनादित्यं च) अनादिता

भी (आशिषः) इच्छा के (नित्यत्वात) नित्य होने से।

भा०—प्रत्येक जीव में सदैव बने रहने की स्वाभाविक इच्छा पाई जाती है इस लिए पूर्व जन्म अनुभव पाया जाता है जिसकी वासनायें इस जन्म में मृत्यु से बचने की है पूर्व जन्म में भी इसी प्रकार होगी अतः उसके ही अनुसार उसकी वासना बनेगी अतः उत्तरोत्तर जन्म सिद्ध होता है। वासना और जन्म अनादि है कोई भी जन्म सब से पूर्व होता नहीं माना जा सकता है।

सं०—वासना अनादि हैं फिर उनका अभाव कैसा ? और वासना रहते मोक्ष कैसी ?

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वा देषामभावे तदभावः ॥११॥

प० क्र०—(हेतु, फला, श्रया, लम्बनैः) हेतु फल आश्रय और आलम्बन से (संगृहीतत्वात्) संचय होने से (एषा) हेतु फल आश्रय और आलम्बन के (अभावे) अभात में (तद भावः) वासनाओं का अभाव होता है।

भा०—वासनायें अनन्त हैं परन्तु वह समस्त कारण, प्रति फल और आधार तथा आश्रय में संचित होती हैं अविद्यादि क्लेश शुक्ल कर्म वासनाओं के कारण हैं जाति, आयु और भोग उसका प्रति फल है जिस के आधार यह दोनो हों वह चित्त हैं। शब्दादि विषय आलम्बन हैं

जब तत्व ज्ञान से इनके कारणों का अभाव हो जाता है तब बासना नष्ट हो जाती हैं।

सं०—जब असत् की उत्पत्ति नहीं और सत का नाश नहीं तो बासनायें जो सद्रूप है यह कैसे निवृत्त होगीं।

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्व-भेदाद्धर्माणाम् ॥१२॥

प० क्र०—(अतीता, ऽना,गतं) भूत और भविष्य (स्वरूपतः) स्वरूप से (है). (अध्व, भेदात्) काल भेद से (धर्माणां) कार्यों के।

भा०—ऐसा नहीं होता कि बासनाओं का नाश हो तो वह समूल ही नष्ट हो जाती हों, केवल वर्त्तमान स्थति से भूत में चली जाती है क्योंकि कार्य अपने कारण में रहा करते हैं उनका भेद काल भेद से माना जाता है यह कार्य भविष्यत अवस्था में होते हैं तब तक कार्य प्रकट नहीं करते और भूतावस्था में अपना कार्य रोक देते हैं इसी प्रकार बासना स्वरूप से नष्ट नहीं होती किन्तु वह भूतावस्था में चली जाती हैं।

सं०—यह धर्म यथार्थ में क्या हैं !

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥१३॥

प० क्र०—(ते) वे (व्यक्त, सूक्ष्माः) प्रत्यक्ष सूक्ष्म (गुणात्मानः) गुणरूप हैं।

भा०—वर्त्तमान धर्म की व्यक्तावस्था है और भूत और भविष्यत् सूक्ष्म हैं यह धर्म महतत्व से भूत भौतिक पर्य्यन्त सब के सब गुणों के क्रम मात्र हैं यथार्थ में सब गुण स्वरूप ही हैं यह गुण इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होता जो दिखाई देता है वह गुणों का तारतम्य मात्र ही दीखता है।

सं०—यह तीनों गुण मूल कारण हैं तो इन से उद्भूत वस्तु एक कैसे कहला सकती है!

परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्वम् ॥१४॥

प० क्र०—(परिणामै, कत्वात्) परिणाम के एक होने से (वस्तु तत्वम्) वस्तु-एकता होती है।

भा०—गुण यद्यपि तीन हैं परन्तु सब मिलकर परिणाम एक ही उत्पन्न करते हैं। यह गुण बहुत होते हुये भी उनके परिणाम एक होने में कोई विरोध नहीं आता।

सं०—जगत गुणों का कार्य है कि विज्ञान तत्त्व भासित होता है।

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्था ॥१५॥

प० क्र०—(वस्तु, साम्ये) वस्तु के एक होने से (चित्त,भेदात) ज्ञान भेद न (तयोः) चित्त और वस्तु का (विभक्तः) भिन्न २ (पन्थाः) मार्ग है।

भा०—जब संसार में एक ही पदार्थ को देखकर कोई प्रसन्न और अप्रसन्न होता है इसी प्रकार कोई क्या मोहित होता है कोई उसे उदासीनता अर्थात् उपेक्षा से देखता है।

वस्तु सबको एक सी ही भासित होती है। परन्तु अनेक चित्तों का विषय वह एक वस्तु हो है यह ज्ञान कि "वही यह वस्तु है" इस प्रकार को प्रतीति भी सबका एक सी है अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि चित्त से भिन्न को भिन्न वस्तु अवश्य है जो अपने स्वरूप में स्थित है।

सं०—वस्तु ज्ञान से भिन्न हो तौभो उसकी सत्ता तो चित्ताधीन है।

न चैकचित्ततन्त्रं वस्त तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥१६॥

प० क्र०—(न, च) नहीं (एक चित्त तंत्रं) एक चित्ताधीन (वस्तु) पदार्थ हैं (तत्) वह बिना प्रमाण के (तदा) उस काल में (किं) क्या (स्यात्) होगी।

भा०—वस्तु ज्ञान के सम काल में होती है न कि अन्य काल में इस लिये ग्राह्य वस्तु एक ज्ञान के आधीन नहीं होती क्योंकि उस काल में वह प्रमाण हीन किस प्रकार की होगो क्योंकि वाह्य पदार्थ तो चित्त से भिन्न अपनी स्वतंत्र सत्ता वाले हैं।

सं०—पदार्थ यदि चित्त से भिन्न हैं तो कभी उनका ज्ञान होना और कभी न होना इस में क्या कारण है।

तदुपरागापेक्षत्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥१७

प० क्र०—(तदुपरागा, ऽपेक्षत्वात्) ऽपराग की इच्छा वाला होवे

अ०—(चित्तस्य) चित्त को (वस्तु) पदार्थ (ज्ञाताज्ञातं) प्रतीत तथा अप्रतीति होती है।

भा०—वस्तु है यह और बात और उसका ज्ञान होना दूसरी बात है ज्ञान क्रिया के समय चित्त के साथ उस पदार्थ का सम्बन्ध होना आवश्यक है जो पहिले बाह्य वस्तुओं का इन्द्रियों से और उस के द्वारा चित्त तक वस्तु-बिम्ब पहुँचने तक जो पदार्थ का चित्त से सम्बन्ध स्थापित होना है यही वस्तु ज्ञान का कारण है यदि यह सम्बन्ध न हो तो वस्तु ज्ञान नहीं होता।

सं०—क्या वस्तुओं की भांति चित्त की भी ज्ञात और अज्ञात वृतियाँ हैं।

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् १८

प० क०-(सदा ज्ञाताः) सदैव ज्ञात होती है (चित्त वृत्तयः) चित्त की वृत्तियां (तत्प्रभोः) चित्त-प्रभु (पुरुषस्य) पुरुष को (अ, परिणामित्वात्) परिणाम शील न होने से।

भा०—बाह्य वस्तु का चित्त से सम्बन्ध इन्द्रियों द्वारा होता है इसी सम्बन्ध से वस्तु ज्ञात होती हैं परन्तु चित्त-वृत्तियों का ज्ञाता आत्मा है और इसमें उसे किसी सहायता की आवश्यकता नहीं क्योंकि चित्त और आत्मा का सीधा सम्बन्ध है इसलिये वह पुरुष से अज्ञात नहीं चाहे

भी अवस्था क्यों न हो। चित्त तो परिणामी
कभी वह वस्तु स्थिति जानता है और कभी नहीं,
पुरुष अपरिणामी है इसलिये यह सदा चित्त वृत्ति
जानता है। यह चित्त बाहर की वस्तु योग से उसके
आकार में आती है और चिति परिणामहीन होकर
उस परिणित चित्त को देखता है यही चित्त और
चिति का अन्तर है :—

सं०—जब चित्त ही दीपक की भांति प्रकाश और प्रकाशय अपने आप है तो आत्मा के भिन्न मानने की क्या आवश्यकता है।

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् १९

प० क०—(न) नहीं (तत्) चित्त (स्वाभासम्) स्वप्रकाश (दृश्यत्वात्) दृश्य होने से।

भा०—बाह्य इन्द्रिय और शब्द आदि विषय दृश्य तो हैं परन्तु स्वप्रकाश नहीं इसी भांति चित्त एक दृश्य है वह भी स्वप्रकाश वाला नहीं। क्योंकि चित्त के सब परिणाम दीखते हैं परन्तु यह परिणाम उससे भिन्न है। जो इनका दृष्टा है वही दूसरा पुरुष या आत्मा अथवा चिति है।

सं०—क्या दृष्टा को एक समय में दो ज्ञान होते हैं।

एकसमये चोभयानवधारणम् ॥२०

क०—(एक, समये, च) एक ही समय में (उभयानवधारणं) चित्त और विषय का ज्ञान न होने से।

और विषय दो भिन्न वस्तुयें हैं इनका द्रष्टा को तक ही समय में दो ज्ञान प्रतीति होना सम्भव नहीं क्योंकि परिणाम में आये चित्त के लिये भिन्न प्रकार के कार्यों के लिये भिन्न कारणों का होना आवश्यक होता है परन्तु यहां कारण भी एक उत्पत्ति रूप क्रिया है इससे उसके दो विभिन्न प्रकार के कार्य नहीं हो सकते।

सं०—चित्त विषय को देखता है और वह चित्त आगे के चित्त से देखा जाता है इससे तो विषय और चित्त दोनों का ज्ञान होना सम्भव है।

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसंगः स्मृतिसंकरश्च ॥ २१ ॥

प० क्र०—(चित्तान्तर, दृश्ये) अन्य चित्त ग्राह्य होने से (बुद्धि बुद्धेः) बुद्धि की बढ़ोतरी की (अतिप्रसङ्गः) पुनरावृत्ति (स्मृति, संकरः च) और स्मृति के मिश्रण से।

भा०—पहिला चित्त दूसरे चित्त का दृश्य नहीं हो सकता क्योंकि ज्ञान से ज्ञान की अनवस्था हो जायगी और स्मृतियों में बड़ा संमिश्रण हो जावेगा। अर्थात पूर्व किसी वस्तु का ज्ञान फिर उस वस्तु के ज्ञान का ज्ञान, उसके ज्ञान का ज्ञान यह एक ज्ञान कभी अवसान पर न आवेगा क्योंकि जन्य ज्ञान तो दृश्य ही रहेगा और उसके द्रष्टा की आवश्यकता बनी ही रहेगी इस लिये चि-

से परेचिति शक्ति है जो चित्त की द्रष्टा
दृश्या

सं०—चित्त यदिनस्वं प्रकाश है न अन्य चित्त का दृश्य है
उससे अनुभव कैसे बनेगा।

चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥२२॥

प० क्र०—(चितेः) चितिका (अ प्रति संक्रमायाः) क्रिया रहित में (तदाकार ऽऽपत्तौ) चित्ताकार होने मे (स्व, बुद्धे, संवे दनम्) अपनी बुद्धि का अनुभव।

भा०—चित्त में जैसे विषय ज्ञान काल में परिणाम देखा जाता है उस प्रकार का परिणाम चित्त के अनुभव करने में पुरुष में नहीं होता। पुरुष स्वस्वरूप स्थिति चित्त का देखता है क्योंकि वह द्रष्टा और चित्त दृश्य है और शान्त होने में शान्त और क्रोध में क्रोधी हुआ प्रतीत होता है यथार्थ में यह परिणाम चित्त में हैं न कि पुरुष में।

सं०—क्या चित्त से भिन्न कोई बाह्य वस्तु है और उससे भिन्न कोई आत्मा है।

द्रष्टदृश्योपरक्त चित्तं सर्वार्थम् ॥२३॥

प० क्र०—(द्रष्ट, दृश्योपरक्तम्) द्रष्टा और "दृश्य से रंजित" (चित्तम्) चित्त को (सर्वाऽर्थम्) सम्पूर्ण विषय वाला होता है।